યુગાંત

आचार्य श्री की पावन छाया

संन्यास के आलोक में

प्रेमी साधकगण

•

स्वामी आनंद मूर्ति, अहमदाबाद

•

स्वामी कृष्ण चैतन्य, आजोल
माँ योग समाधि, राजकोट

•

स्वामी आनंद विजय, जबलपुर

•

माँ योग प्रिया, आजोल
माँ आनंद मधु, आजोल
माँ योग प्रेम, आजोल

सु
एक
सुकरात
नकारात

सुकरात अब भी हंस रहा है !

एक एथेंसवासी, काइरेफान, ने डेल्फी-मंदिर की देवी-आविष्ट पुरोहित से पूछा था कि क्या सुकरात मनुष्यों में सर्वाधिक बुद्धिमान पुरुष है ? देवी का उत्तर विधायक था, लेकिन भाषा नकारात्मक थी ! उसने कहा था : "सुकरात से अधिक बुद्धिमान और कोई नहीं है।"

सुकरात ने यह सुना तो वह बड़ी उलझन में पड़ा।
बुद्ध होता तो प्रसन्न होता।
बुद्धिमान था इससे उलझन में पड़ा!
उसने स्वयं को कभी बुद्धिमान नहीं माना था।
बुद्धिहीनों के अतिरिक्त स्वयं को बुद्धिमान और कोई मान भी नहीं सकता है।
और स्वयं को सर्वाधिक बुद्धिमान मानने में तो शायद बुद्धिहीन भी थोड़ा झिझकेंगे!
वैसी मान्यता के लिए तो पागल होना अत्यंत अनिवार्य शर्त है।
लेकिन, फिर डेल्फी की देवी का अर्थ क्या है?
वह स्वयं तो भली-भांति जानता था कि उसके अज्ञान की कोई सीमा नहीं थी।
ज्ञान जितना बढ़ा था अज्ञान भी उतना ही दिखाई पड़ा था।
अज्ञान के ज्ञान के अतिरिक्त और तो कोई ज्ञान उसके पास नहीं था।
स्वभावतः सुकरात खोजने निकला।
देवी के नकारात्मक शब्दों में ही रहस्य की कुंजी हो सकती थी!
एथेंस जिन्हें भी बुद्धिमान मानता था, सुकरात उनमें से एक-एक के पास गया।

वह चाहता था कि अपने से ज्यादा बुद्धिमान आदमी को खोजकर देवी के सामने उपस्थित कर सके।

लेकिन यह नहीं हो सका।
क्योंकि, वह जिनके भी पास गया उनके पास ज्ञान तो था लेकिन बुद्धिमत्ता नहीं थी।
ज्ञान (knowledge) अर्थात् मृत सूचनायें, ज्ञान अर्थात् उधार शब्द, ज्ञान अर्थात् बासे शास्त्र।

लेकिन उस बुद्धिमत्ता (wisdom), उस प्रज्ञा के दर्शन कहीं न हुए जो कि स्वयं से ही आती है। जो कि स्व-चेतना का ही रूपांतरण है। जो कि सुनी हुई नहीं है, पढ़ी हुई नहीं है, श्रुति नहीं है, स्मृति नहीं है, वरन् अनुभव है, अनुभूति है।

नहीं, वह प्रकाश उसे कहीं न मिला जिसकी ज्योति अंतस् से निकलती है।
न ही वह संगीत उसे कहीं सुनाई पड़ा जो कि अंतस् की वीणा पर बजता है।
और न ही उस सुगंध की ही कहीं गंध मिली जो कि आत्मा के फूलों से जन्मती है।
वह सब जगह से निराश लौटा।
और समझ गया कि देवी के शब्द नकारात्मक क्यों थे?

देवी ने नहीं कहा था कि सुकरात सर्वाधिक बुद्धिमान है। देवी ने कहा था: "सुकरात से अधिक बुद्धिमान और कोई नहीं है।

उस दिन सुकरात स्वयं पर ही हंसा होगा।
जरूर हंसा होगा।
क्योंकि बुद्धू दूसरों पर हंसते हैं।
और स्वयं पर सिर्फ बुद्धिमान ही हंस सकते हैं।
सुकरात ने कहा होगा: देवी का अर्थ मैं समझ गया। मजाक गहरी है। देवी ने कहा है: सुकरात सबसे कम बुद्धिहीन है क्योंकि उसे अपनी बुद्धिहीनता का पता है।

सुनें।
आपभी सुनें
सुकरात की हंसी अब भी मौजूद है।
सुकरात अब भी हंस रहा है।
लीजिये, मैं ही हंसकर सुनाये देता हूं ?
लेकिन, शायद आप सुन न सकेंगे ?
क्योंकि, जो स्वयं पर नहीं हंस सकता है, वह सुकरात की हंसी कैसे सुन सकता है ?
सकरात की हंसी सनने के लिए सुकरात होना भी जरूरी है ?

—(एक चर्चा से)
(संकलन : मां योग क्रांति)

फूल, और फूल, और फूल....

* अपनी सुविधा का बहुत विचार मत करना। और विचार सदा सुविधा का ही होता है। दर्शन सत्य का होत है, विचार सुविधा का होता है।

* अगर विचार छोड़ रहे हो तो 'मेरा विचार' कहना छोड़ दो क्योंकि जहाँ 'मेरा' है, वहाँ कैसे छूटेगा।

* अगर जीने की कला सीखनी हो तो जो अतीत हो गया है उसे अतीत हो जाने दें।

* सिर्फ मृत्यु से डरे हुए आदमी में अहंकार होता है।

* विचारवान व्यक्ति अगर मुफ्त में मिलता है परमात्मा तो ठुकरा देगा।

* पाना महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण है खोजना।

* ध्यान रहे, गैर पढ़े-लिखे अंधविश्वास से पढ़ा-लिखा अंध विश्वास अपने अंध विश्वास को अंधविश्वास ही नहीं मानता।

* अभय, भय की अनुपस्थिति नहीं है। अभय भय की उपस्थिति में सामना करने का साहस है।

* खतरे में जियो क्योंकि खतरे में जीने से ज्यादा आनंदपूर्ण कुछ भी नहीं है।
* अपने संकल्प से सड़क के किनारे पत्थर तोड़ना बेहतर है। खुशामद करके राष्ट्रपति होना भी बदतर। क्योंकि संकल्प लेकर काम करने से आत्मा जागती है।

संकलन : स्वामी अगेह भारती

जीवन के नये आयाम

(पोरबंदर में दिया गया आचार्य श्री का प्रश्नोत्तर प्रवचन)

संकलन : श्रीमती जयवंती (जूनागढ़)

मेरे प्रिय आत्मन्,

तीन दिनों के विचारों के संबंध में बहुत से प्रश्न पूछे गए हैं। ज्यादा से ज्यादा प्रश्नों के संबंध में मैं बात करने की कोशिश करूँगा, एक मित्र ने पूछा है कि आप आत्मसाधना की ही बात करते हैं, समाज सेवा की नहीं तो समाज सेवा की बात करें तो अच्छा।

उनका कहना ऐसा ही है, जैसे कोई प्रकाश की बात करे और सुनने के बाद आप कहें कि आप सिर्फ प्रकाश की ही बात करते हैं, अंधेरे को दूर करने की नहीं, आप अंधेरे को दूर करने की भी बात करें तो अच्छा। प्रकाश हो तो अंधेरा दूर हो जाता है। और प्रकाश की बात करने के बाद भी कहना पड़े कि अंधेरा दूर करना होगा तो ऐसे प्रकाश से सावधान रहना। वह प्रकाश नहीं होगा, धोखा होगा। लेकिन ऐसा धोखा होता रहा है, हो रहा है। जो व्यक्ति साधना में नहीं गया, उसकी सेवा अनिवार्य रूप से धोखा सिद्ध होती है। असल में जिसने स्वयं को नहीं जाना, उसके जीवन में सेवा की संभावना ही नहीं है। सेवा कर सकता है लेकिन, वह करना भी अहंकार पूजा होगी और इसलिए जिसे हम सेवक कहते हैं, वह बहुत जल्दी मालिक बन जाते हैं। समाज सेवक से थोड़ा सावधान रहना। असल में जो बुद्धिमान है वह आपके पैर दबाने से शुरू करते हैं और गरदन दबाने पर अन्त करते हैं। इस देश में बहुत से सेवक पैर दबाते-दबाते गरदन दबाने पर पहुंच गये हैं। उनको हम भली भांति पहचानते हैं। कुछ उनके संबंध में कहने की जरूरत नहीं है। असल में किसी की गरदन दबाना हो तो पैर दबाने से शुरू करना वैज्ञानिक विद्या है। एकदम से किसी की गरदन दबाने से झंझट का डर है। और पैर दबाते-दबाते गरदन पकड़ लेना बहुत आसान है। जिसने स्वयं को नहीं जाना है, उसके जीवन में न प्रेम होता है-न करूणा होती है-न सेवा होती है। वह सेवा को भी व्यवसाय ही बना लेता है। इसलिए इस देश में सेवक व्यवसायी हो गये हैं और जैसा सेवा का व्यवसाय फलता फूलता है, वैसा और कोई व्यवसाय फलता फूलता आज तो दिखाई नहीं पड़ता है। फिर सदा से हमें यह समझाया गया कि दूसरे की सेवा करो। लेकिन जब तक प्रेम हृदय में न जन्मा हो, दूसरे की सेवा संभव कैसे ? असल में दूसरे की सेवा तभी संभव है जब दूसरा मिट जाय और जब मैं ही दूसरे में दिखाई पड़ने लगूं तभी सेवा संभव है। मेरी दृष्टि में सेवा साधना का फल है, सेवा साधना नहीं है और सेवा का फल भी साधना नहीं है। साधना का फल सेवा है। और साधनापूर्ण जीवन में सेवा ऐसे ही आ जाती है, जैसे आपके पीछे आपकी छाया आती है। लेकिन छाया को आपसे अलग नहीं लाया जा सकता है। या ऐसा समझें कि कोई आदमी गेहूं बोता है तो भूसा भी गेहूं के साथ आ जाता है लेकिन भूसा बोये तो गेहूं उसके साथ नहीं आ जायेगा, ऐसी भूल मत कर लेना। जिनके जीवन में अध्यात्म की किरण आयेगी, उनके जीवन में सेवा का आनंद भी अपने आप आ जायेगा। लेकिन.... तब वह सेवक होकर अहंकार की कोई तृप्ति नहीं कर लेगे और तब वे सेवा करके आपको दिखाने न आयेंगे कि मैंने आपकी सेवा की है। और तब वह सेवा करके सेवा का प्रतिफल मांगने के लिए राष्ट्रपति भवन के सामने घिराव भी नहीं करेंगे। सेवा का प्रतिफल अगर कोई मांगता हो तो समझ लेना कि

उसके जीवन में सेवा नहीं है । सेवा तो स्वयं अपना प्रतिफल है । उसका आनंद स्वयं उसमें है ।

एक माँ अपने बेटे की सेवा कर रही है । अगर वह कभी भी लौटकर बेटे से यह कहती है कि मैंने तेरी सेवा की थी और अब तू मेरी सेवा कर तो समझ लेना कि वह माँ नहीं है, नर्स ही थी । बेटे को पेट में ढोने से कोई माँ नहीं हो जाती है । माँ का आनंद तो बेटे की सेवा करने में पूरा हो गया । वह सेवा में ही पूरा हो जाता है । इसलिए मैं सेवा की बात नहीं करता हूं । और कारण भी हैं । सेवकों ने जितनी मिस्चीफ और जितना भी उपद्रव जगत में किया है उतना और किसी ने किया नहीं है । सेवक के लिए आप महत्वपूर्ण कम हो, सेवा ज्यादा महत्वपूर्ण है ।

एक घटना जो मैं निरंतर कहता हूं, वह आपसे मैं कहूं । मैंने सुना है एक स्कूल में एक चर्च के पादरी ने बच्चों को आकर समझाया कि अपने जीवन को सेवा का जीवन बनाओ । छोटे बच्चे थे, उन्होंने पूछा : कैसे बनायें ? तो उसने कहा सात दिन में कम से कम एक सेवा का काम जरूर करो । उन बच्चों ने पूछा कि जैसे उदाहरण समझा दें । तो उसने कहा कि कोई नदी में डूबता हो तो उसे बचाओ, किसी के घर में आग लगी हो तो बुझाओ और ऐसी बहुत सी बातें हैं, कोई बूढ़े आदमी को सड़क पार करनी हो, सड़क पार करा दो, कोई गरीब रास्ते पर गिर पड़ा है उसे उठाओ, किसी को प्यास लगी है पानी पिलाओ । सात दिन बाद वह लौटा और उसने स्कूल के बच्चों से पूछा कि तुमने कोई सेवा का कार्य किया ? जिन्होंने किया हो वह हाथ ऊपर उठा दें । तीस बच्चे थे । तीन बच्चों ने हाथ ऊपर उठाये । उस पादरी ने कहा फिर भी काफी है, तीन ने किया है कल और लोग भी करेंगे । नंबर एक के लड़के से पूछा कि तूने कौन सी सेवा की ? उसने कहा मैंने एक बूढ़ी को सड़क पार करवाई । उसने कहा बहुत-बहुत भगवान का तेरे ऊपर आशीर्वाद होगा । दूसरे से पूछा तूने क्या किया ? उसने कहा मैंने भी एक बूढ़ी औरत को सड़क पार करवाई । तब पादरी को थोड़ा शक तो हुआ फिर भी उसने सोचा कि बूढ़ी औरतों की कोई कमी तो है नहीं, इसे भी बूढ़ी औरत मिल गई होगी । फिर उसने तीसरे से पूछा कि तूने क्या किया ? उसने कहा मैंने भी एक बूढ़ी औरत को सड़क पार करवाई । तब उसे थोड़ा शक हुआ । उसने कहा कि तुम तीनों को बूढ़ी औरतें मिल गईं ? तो उन तीनों ने कहा कि नहीं बूढ़ी औरत तो एक ही थी । हम तीनों ने मिलकर उसे पार करवाया । उस पादरी ने कहा क्या बूढ़ी बहुत अशक्त थी ? उन तीनों ने कहा कि अशक्त नहीं थी, बड़ी ताकतवर थी, हम बड़ी मुश्किल से पार करा पाये । क्योंकि, वह उस तरफ जाना ही नहीं चाहती थी । (हास्य) लेकिन आपने कहा था कोई सेवा कार्य करना चाहिए, वह हम करके आये हैं । अच्छा हुआ कि उन्होंने किसी मकान में आग लगाके नहीं बुझाई और अच्छा हुआ कि किसी को पानी में डुबा के न निकाला । सेवा वह भी करते हैं । असल में सेवा को मुर्दा नहीं बनाया जाना चाहिए । कोई आदमी सेवा करने का ठेका ले के निकले तो खतरा है । सेवा जीवन का सहज हिस्सा होना चाहिए । अब वह सहज हिस्सा कैसे होगी ? वह सहज हिस्सा दो तीन बातों से ही हो सकती है । एक तो दूसरे का दुःख आपको अपना मालूम पड़ने लगे । लेकिन दूसरे का दुख कब अपना दुख मालुम पड़ सकता है ? दूसरे का दुःख अपना दुःख तभी मालुम पड़ सकता है, जब दूसरे के भीतर और हमारे भीतर कोई सेतु जुड़ जाय, उसके पहले नहीं । उसके पहले तो हमें दूसरे के दुख में थोड़ा रस ही आता है । इस बात को थोड़ा ठीक से समझ लेना जरूरी है । इसे जरा दूसरी तरफ से समझें तो ख्याल में आ जायगा । दूसरे के सुख में आपको सुख आता है ? दूसरे के सुख में आपको सुख नहीं आता है । दूसरे के सुख में आपको दुःख होता है । जब पड़ौस में कोई एक बड़ा मकान बन जाता है तो आप सुखी होते हैं ? आप ईर्ष्या और जलन से दुखी हो जाते हैं । दूसरे के सुख में जब तक आपको सुख नहीं आता तब तक आप पक्का समझ लेना कि दूसरे के दुःख में आपको दुख नहीं आ सकता । ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । जब तक दूसरे के सुख में आपको दुःख

होता है तब तक आपको दूसरे के दुःख में भीतरी सुख मिलता रहेगा। और जब आप सहानुभूति दिखलाते हैं दूसरे के दुख में तो अगर आप अपने भीतर जांच पड़ताल करेंगे तो बहुत हैरान होंगे कि सहानुभूति में आपको बड़ा मजा आता है। जब सड़क पर कोई गिर पड़ा है और चार लोग उसे उठाके कहते हैं कि बहुत बुरा हुआ कि गिर पड़े, तब अगर उनकी आंखों को और उनके हृदय को जांचा जा सके तो आप पायेंगे कि बड़े प्रसन्न हो रहे हैं कि वे नहीं गिरे हैं और कोई गिर गया है। और किसी गिरे हुये पर दया करने का भी एक अपना रस और आनंद है। जब किसी के घर में आग लग जाती है तो आप जा के जो दुःख जाहिर करते हैं, यह वही घर है जो जब कल बड़ा होके उठा था आपके पास तो आपको दुःख हुआ था। इसमें लग गई आग तो आप जो दुख प्रगट करते हैं—बहुत खोज करेंगे तो भीतर सुख की धारा भी बहती हुई पायेंगे। रास्ते पर दो आदमी लड़ रहे हों, गालियां बक रहे हों—भीड़ लग जाती है देखने वालों की। जरूरी काम से भी जाता हुआ आदमी साइकिल रोक के भीड़ में खड़ा होके देखने लगता है, जरूर कोई रस आ रहा है। ऐसे वे सभी कहते हुये मालुम पड़ेंगे कि भाई लड़ो मत लेकिन, भीतर उनका मन होता रहेगा कि ऐसा न हो कि बिना लड़े सब खतम हो जाय, थोड़ा हो ही जाय तो थोड़ा मजा आ जाय। और अगर वह आदमी उनकी बात मान लें और कहें कि आप जब सब कहते हैं तो हम नहीं लड़ते, जाते हैं तो उनके चेहरे आप देखेंगे कि सब उदास अपनी साइकिलों पर सवार होके लौट रहे हैं। कुछ होना था जो नहीं हुआ। आदमी जो ऊपर से दिखला रहा है, वही भीतर नहीं है। भीतर आदमी बहुत और हैं, इसलिए अखबार में अट्ठानबे प्रतिशत गुंडागीरी, दंगा, युद्ध, भूकंप, हत्या, आत्महत्या, आगजनी इनकी खबरें छापनी पड़ती हैं। क्योंकि सारे पढ़ने वालों के चित्त सुबह से उठके इनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। कहां-कहां आग लगी, कहां-कहां दंगा हुआ, कहां-कहां गोली, अगर अखबार में ये खबर न हों, अखबार बिकना बंद हो जाता है। जो अखबार इस तरह की ज्यादा खबरें छाप पाता है, वह ज्यादा बिक पाता है। आखिर बात क्या है? आखिर उन खबरों के पढ़ने में कोई रस ले रहा है कहीं। जिस फिल्म में हत्या न हो, व्यभिचार न हो, उस फिल्म को कोई देखने नहीं जाता है। उसमें थ्रिल नहीं होती, उसमें सुख की पुलक नहीं आती है। लेकिन जो फिल्म इस तरह की सारी बातों को प्रगट कर सके, वहां भीड़ क्यों खड़ी हो जाती है। बात क्या है? बर्नाडशॉ ने एक बार मजाक में कहा था कि अच्छे आदमी की जिन्दगी पर कहानी लिखनी पड़े तो वह बिकेगी नहीं। क्योंकि अच्छे आदमी की कोई कहानी ही नहीं होती। कहानी सिर्फ बुरे आदमी की होती है। अगर दुनिया में अच्छे-अच्छे आदमी रह जायें तो अखबार बिल्कुल बेकार हो जायेगा।

मैंने सुना है: स्वर्ग में कोई अखबार नहीं निकलता है। नर्क में बहुत अखबार निकलते हैं। नर्क में घटनायें घटती हैं, स्वर्ग में कोई घटना नहीं घटती। बर्नाडशॉ ने एक बार और एक बहुत बढ़िया बात कही थी। उससे किसी ने पूछा था कि समाचार क्या है? न्यूज क्या है? तो बर्नाडशॉ ने कहा: अगर एक कुत्ता एक आदमी को काट ले तो यह कोई समाचार नहीं है, जब तक कि एक आदमी कुत्ते को न काटे। कुत्ते को आदमी काटे तो न्यूज, कुत्ता आदमी को काट ले तो इसमें कोई समाचार नहीं है। इसमें क्या बात है। नर्क में बहुत समाचार घटित होते हैं। स्वर्ग में कोई अखबार नहीं चलता—चल भी नहीं सकता है। कोई घटना नहीं है और अच्छे आदमी की जिन्दगी में कुछ होता नहीं है। जिसको छापके बताया जा सके, जिसमें कोई रस ले सके। यह जो हमारा चित्त है जो दूसरे के दुःख और पीड़ा में रस लेता है, यह चित्त सेवा नहीं कर सकता है। यह चित्त सेवा में भी एक तरह का मजा ले रहा है। यह हो सकता है कि हजार रोगियों को देख के भी यह प्रसन्न होता हो और हजार रोगियों के पैर दबा के भी भीतरी रस पाता हो। आदमी का मन बहुत जटिल है। मैं सेवा की बात नहीं करता। मैं तो बात करता हूं, साधना की। जीवन में साधना घटित हो तो यह चित्त बदलेगा और यह चित्त बदले तो आपके जीवन का सारा

व्यवहार बदलेगा। आपका जीवन का व्यवहार कल सेवापूर्ण हो सकता है लेकिन, वह होगा आपके बिना जाने, सहज स्पॉन्टेनीयस, सहज स्फूर्त होगा। सेवा आपके जीने का ढंग होगी, आपकी व्यवस्था नहीं। सेवा एक डीसीप्लीन नहीं है, एक अनुशासन नहीं है कि कोई अपने ऊपर थोप ले। नहीं, सेवा एक सहज जीवन की सुगंध है। लेकिन, सहज जीवन कैसे मिले? सहज जीवन आरोपित नहीं होता। सहज जीवन भीतर से जन्म लेता है। और भीतर से सहज जीवन के जन्म लेने की प्रक्रिया का नाम ही आत्म साधना है। मैं नहीं करूंगा बात सेवा की। क्योंकि, सेवा मेरे लिये परिणाम है, साधना मेरे लिये मूल है। और इस देश ने इधर पचास वर्षों में बहुत घातक नुकसान उठाया कि पचास वर्षों में कुछ लोगों ने इस तरह की बातें कीं, उन्होंने कहा: सेवा ही धर्म है। एक आदमी स्कूल खोल ले और बच्चों को पढ़ा दे तो हो गई साधना। तो महावीर ने गलती की, स्कूल में मास्टर हो जाते तो ज्यादा अच्छा होता। किसी ने कहा कि अस्पताल खोल लो और मरीजों के हाथ पैर दबाते रहो। तो बुद्ध-बुद्धु रहे, अस्पताल खोल लेते, मरीजों के हाथ पैर दबाते तो ठीक हो जाता। कोई कह रहा है—सड़क साफ कराओ, कोई कह रहा है; भंगी की बस्ती में बुहारी मार दो तो बस हो गई साधना। धर्म मजाक नहीं है। और ऐसे लोग अगर कल यह भी कहने लगें कि मरीज के पैर दबा दो हो गया विज्ञान, भंगी की झोपड़ी को साफ कराओ हो गई सब उपलब्धि। मैं नहीं कह रहा हूं कि भंगी को शुद्ध नकरो, साफ न करो, मैं नहीं कह रहा हूं कि मत करो, मैं नहीं कह रहा हूं कि सड़क मत झाड़ो। लेकिन मैं यह कह रहा हूं; यह धर्म नहीं है। धर्म कुछ और है। और धर्म आये तो यह सब तो उसके पीछे अपने आप चला आएगा भूसे की तरह। लेकिन अगर इसी भूसे को साधते रहे तो धर्म नहीं आ जायगा। इसलिए इधर पचास वर्षों में हमने कुछ ऐसे महात्मा भी पैदा किये हैं, जिनको पचास वर्षों के पहले हम कभी महात्मा नहीं कह सकते थे। हम कहते अच्छे आदमी हैं, सेवक हैं लेकिन, महात्मा नहीं कह सकते थे। कारण है। अब वह कारण है कि साधना के अलग ही सूत्र हैं। अलग उनकी अपनी व्यवस्था है। और उस व्यवस्था को इसके साथ तालमेल बैठा देने का कोई अर्थ नहीं है। लेकिन नुकसान भारी है। नुकसान हुआ है। ईसाई मिशनरीज जीसस के बाद न मालुम कब इस भ्रांति में पड़ गये कि सेवा करना धर्म है। और वे सेवा में लग गये। इसलिए ईसाई मिशनरीज के पास साधना जैसी कोई चीज न रह गई। विवेकानंद पश्चिम में गये और उनने देखा कि ईसाई मिशनरीज सेवा कर रहा है। उन्होंने भी आके रामकृष्ण मिशन बनाके और संन्यासियों को सेवा में लगा दिया। रामकृष्ण मिशन का आदमी भी अब स्कूल में, अस्पताल में, मरीज में, इसमें उलझा हुआ है। साधना से उसका भी कोई संबंधनहीं रह गया। रामकृष्ण की मूल धारा को जिस भांति विवेकानंद ने नुकसान पहुंचाया, किसी दूसरे आदमी ने नहीं पहुंचाया। लेकिन वह दिखाई नहीं पड़ता है। और हमें भी ठीक लगता है कि अस्पताल खुले, स्कूल हो, बिल्कुल ठीक है। अस्पताल बहुत हों, स्कूल बहुत हों, यह सब ठीक है लेकिन यह धर्म नहीं है। और अगर यह धर्म हो, तब इसकी सुगंध बिल्कुल और होगी। और अगर इसीको धर्म मानके चलाना पड़े तो धर्म तो कभी नहीं आयगा, बस ये अस्पताल, स्कूल रह जायेंगे। इनका अपना उपयोग है। लेकिन उस उपयोग को धर्म के साथ पर्यायावाची नहीं बनाया जा सकता है। तो मैं आपसे साफ कहना चाहता हूं; साधना मेरे लिए मूल है, सेवा मेरे लिये परिणाम है और हजारों परिणामों में एक। और हजार परिणाम होंगे साधना के उनमें सेवा भी एक परिणाम होगा। सेवा को सीधा साधने की भूल में मत पड़ जाना अन्यथा, सिर्फ अहंकार सधेगा और कुछ भी नहीं सध सकता है।

.....एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि आप जो बातें कह रहे हैं; धर्म की, ज्ञान की, साधना की, यह आज के बिगड़े हुये जमाने में इनसे क्या फायदा हो सकता है?

उनका कहना ऐसे ही है, जैसे कोई दवाओं की बात कर रहे हैं, ये बीमार लोगों के लिए दवाओं से

क्या फायदा हो सकता है ? तो दवाओं का फायदा स्वस्थ लोगों के लिए होता है ? !!! अगर जमाना विकृत है तो फिर और भी ज्ञान की बात तीव्रता से करनी चाहिये। क्योंकि ज्ञान के अतिरिक्त और क्या है जो विकृति को छुड़ा सकेगा। अगर लोग बीमार हैं तो स्वास्थ्य की बात करनी पड़ेगी। लेकिन ऐसे भी डाक्टर हो सकते हैं जो मरीज से कहें कि पहले ठीक हो के आओ तब हम दवा देंगे। लेकिन फिर मतलब क्या है आपकी दवा का ? अगर कोई डाक्टर अपने दरवाजे पर तख्ती लगाले कि जब तक ठीक होकर न आओगे, हम दवा न देंगे। हम तो दवा उसी को देते हैं, जो ठीक होकर आये तो उस डाक्टर का प्रयोजन क्या है ? युग अगर विकृत है तो धर्म की पुनः चर्चा की जरूरत है। एक दूसरी बात यह बिल्कुल भ्रांति है हमारी कि पहले युग अच्छा था और अब विकृत हो गया है। यह सरासर झूठ है। इसमें कुछ सत्य नहीं है। लेकिन यह सत्य दिखाई पड़ने लगा है। इसके कारण समझ लेने उपयोगी होंगे। हमेशा हर जमाने में आज ही नहीं, हर जमाने में आदमी को यह ख्याल रहा है, पहले सब ठीक था, अब सब खराब हो गया। दुनिया में पुरानी से पुरानी किताब चीन में छः हजार वर्ष की उपलब्ध हुई है, उसकी भूमिका में भी लिखा है कि पहले के लोग बहुत अच्छे थे, आजकल के लोग बिगड़ गये हैं। बेबीलोन में पत्थर मिला है कोई दस हजार वर्ष पुराना जिस पर यह लिखा है कि कहां पुराने स्वर्ण युग और कहां आज का अंधेरे का युग ! अभी तक एक ऐसी किताब नहीं मिली जिसने अपने जमाने की तारीफ की हो, अपने जमाने की निंदा करती हैं। यह जरा सोचने जैसा है। इसमें कुछ राज मालूम पड़ता है। क्योंकि जिस पुराने जमाने को हम कहते हैं; वह बहुत अच्छा था, उसी पुराने की किताब उस जमाने को अच्छा नहीं कहती है। वह उसके पहले के जमाने को अच्छा कहती है। ऐसा लगता है कि मनुष्य के मन में कुछ कारण हैं, जिनकी वजह से जो बीत गया वह अच्छा मालूम पड़ता है। जो मौजूद है वह अच्छा नहीं मालूम पड़ता है। कारण दो तीन हैं। एक तो बडा कारण यह है कि अतीत के जमाने के सामान्य आदमी की स्मृति तो मिट जाती है, सिर्फ विशेष आदमी की स्मृति रह जाती है। राम के जमाने में हम राम को जानते हैं, कृष्ण के जमाने में कृष्ण को जानते हैं, बुद्ध के जमाने में बुद्ध को जानते हैं। बुद्ध के जमाने में हमें किसी और आदमी का कोई पता नहीं है। तो जो श्रेष्ठतम आदमी है उस जमाने का वह हमारी याद में होता है। और हमारे जमाने का हमारा जो पड़ौसी है वही आदमी होता है। इन दोनों की हम तौल करते हैं। अपने जमाने के निम्नतम से पुराने जमाने के श्रेष्ठतम की तौल करते हैं इससे बड़ी भ्रांति पैदा होती है। मैं आपसे कहता हूं कि आज के जमाने का जो निम्नतम आदमी है, वह पुराने जमाने के निम्नतम आदमी से बहुत विकसित है। वह इतना पीछे नहीं है। लेकिन पुराने जमाने के निम्नतम आदमी का हमें कोई पता नहीं। उसके जमाने का श्रेष्ठ आदमी ही हमारे निम्न आदमियों से हम तौल करते हैं। इस तौल में गलती हो जाती है। इसमें भूल हो जाती है। बुद्ध के जमाने को हम बुद्ध का युग कहते हैं। वह बुद्ध का युग नहीं था, युग तो उनका था जो बड़ी भीड़ रही होगी। बुद्ध तो अकेले एक आदमी थे। बुद्ध के युग में बुद्ध याद रह जाते हैं, जो अपवाद थे और जो समान्य था वह भूल जाता है। बुद्ध का युग कहलाता है। आज से दो हजार साल बाद गांधी रह जायेंगे, रवीन्द्र याद रह जायेंगे, अरविंद या रमण याद रह जायेंगे, हम सारे लोग भूल जायेंगे। इस हमारे जमाने को जो हमारा है, न गांधी का है, न रमण का है, न अरविंद का है, न रवीन्द्र का है। कहीं चार आदमियों से जमाने बने हैं ? युग तो हमारा है, जेलें हमारी है, पागलखाने हमारे हैं, अस्पताल हमारे हैं, और यह चार आदमी बाद में नाम लग जायेगा, हम सब भूल जायेंगे। दो हजार साल बाद लोग कहेंगे, अरविंद का जमाना, रमण का जमाना, गांधी का जमाना, कैसे अद्भुत लोग रहे होंगे ! हमारे बाबद् कहेंगे ! और हम ! हम मरे जा रहे हैं छाती पीट पीट के कि हमसे बुरा कोई आदमी नहीं है। दो हजार साल बाद आप लटके देख लेना, आपकी तारीफ होती हुई सुनाई पड़ेगी। (हास्य व तालियां) ऐसा ही हो रहा है और यह भी ध्यान रहे; दूसरी बात आपसे कहना चाहता हूं कि जिन जमानों को

हम बहुत अच्छा कहते हैं अगर उस जमाने की शिक्षायें उठाके देखें तो हमको पता चल जायेगा कि बात सच नहीं हो सकती। बुद्ध चालीस वर्ष तक सुबह से शाम तक लोगों को क्या समझा रहे हैं ? चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, दूसरे की स्त्री को मत ले भागो, हिंसा मत करो फलां मत करो, यही बुद्ध चालीस साल समझा रहे, किसको समझा रहे थे ? लोग अच्छे थे तो फिर चोरी और दूसरे की स्त्री मत ले भागो और हिंसा मत करो अच्छे लोगों को समझा रहे थे ? बुद्ध का दिमाग खराब था ? और चालीस साल तक जब यह आदमी एक ही काम कर रहे हैं तो पता चल रहा है कि किनको समझा रहा होगा। सारे शास्त्र इन्हीं बातों से भरे हैं कि चोरी मत करो, हिंसा मत करो, बेईमानी मत करो, संयम रखो, फलां मत बको, इससे पता चलता है साफ कि किस तरह के लोग रहे होंगे सुनने वाले, जिनको यह बातें कहीं गईं। ऐसा तो नहीं हो सकता कि लोग चोरी न करते हों और बुद्ध और महावीर समझा रहे हों कि चोरी मत करो। लोग पकड़ के कहते आप क्या बक रहे हैं ? क्या मतलब ?

मैंने सुना है, एक चर्च में एक संन्यासी आया और चर्च के लोगों ने उससे कहा कि हमें सत्य के संबंध में कुछ समझाओ। उस संन्यासी ने कहा चर्च में सत्य के संबंध में समझाने की जरूरत ही नहीं होनी चाहिए। चर्च में जो लोग आये हैं, मान लेना चाहिए कि वह सत्य को तो प्रेम करते ही होंगे। यह कोई जेल खाना तो नहीं है कि मैं समझाऊँ कि झूठ मत बोलो। फिर भी उन्होंने कहा कि नहीं सत्य के संबंध में कुछ समझाइये। उस संन्यासी को कुछ भ्रांति रही होगी, वह सोचता होगा कि जेलखाने में जो लोग इकट्ठे हैं वह और हैं और चर्च में लोग इकट्ठे होते हैं, मंदिर में, मस्जिद में वह और हैं। और नहीं हैं, वक्त वक्त की बात है। जो आदमी कभी मंदिर में है वह कभी जेल में है, और जो कभी जेल में है वह कभी मंदिर में है। एक ही क्वालीटी के लोग सब तरफ घूम रहे हैं। लेकिन उसने कहा कि अब नहीं मानते तो समझाता हूं सत्य के संबंध में। वह खड़ा हुआ। उसने कहा कि मैं समझाऊँ इसके पहले एक सवाल पूछ लूं। उसने पूछा आप सबने बाइबिल पढ़ा है ? उस चर्च के सारे लोगों ने हाथ उठा दिये कि हमने बाइबिल पढ़ी है। उसने कहा आपने ल्युक का उनहत्तरवां अध्याय पढ़ा है ? सब लोगों ने हाथ उठाये एक आदमी को छोड़कर कि हां हमने पढ़ा है। वह फकीर हँसने लगा उसने कहा अब मैं सत्य के संबंध में जरूर बोलूंगा क्योंकि ल्युक का उनहत्तरवां जैसा अध्याय बाइबिल में है ही नहीं और तुम सबने पढ़ा है। अब मैं समझ गया कि किस तरह के लोग यहां इकट्ठे हैं। मगर मुझे हैरानी है कि यह एक आदमी ने हाथ क्यों नहीं उठाया। यह एक आदमी भी सत्य बोलने वाला यहां कहां से आ गया। उस फकीर ने जोर से पूछा कि मेरे भाई तुमने हाथ नहीं उठाया चमत्कार ! इतने झूठ बोलने वालों में तुम सच बोलने वाले कहां से आ गये ? उसने कहा जरा जोर से बोलिए मुझे कम सुनाई पड़ता है। (जोर से तालियां, हास्य) मैं समझा नहीं, क्या पूछ रहे हैं ? उनहत्तरवां अध्याय ? रोज पाठ करता हूं। (हास्य) यह आम आदमी सदा से ऐसा है। शिक्षायें खबर देती हैं कि आम आदमी आज के आदमी से बेहतर नहीं था। और.....अगर बहु.....त अच्छे लोग थे तो महावीर और बुद्ध को याद रखना मुश्किल हो जाता, तीसरी बात जिस दिन दुनिया अच्छी होगी, उस दिन महापुरुष दिखाई पड़ने बन्द हो जायेंगे। महापुरुष बुरे लोगों की भीड़ में ही दिखाई पड़ते हैं। और कोई उपाय ही नहीं है। स्कूल का मास्टर काले तख्ते पर लिखता है सफेद खड़ीयों से। सफेद दीवार पर भी लिख सकता है लेकिन, तब दिखाई नहीं पड़ेगा, लिख तो जायेगा, दिखाई नहीं पड़ेगा। दिखाई पड़ने के लिए ब्लेक बोर्ड चाहिए और सफेद खड़ीयों से लिखे, तब सफेद खड़ीयों का लिखा हुआ दिखाई पड़ता है। ये जितने महापुरुष सफेद खड़ीया की तरह दिखाई देते हैं समाज के काले ब्लेक बोर्ड पर, अन्यथा, दिखाई नहीं पड़ सकते। अगर महावीर ढाई हजार साल तक हमें याद हैं और राम अगर हम हजारों साल तक याद रखे हुए हैं तो समाज के काले तख्ते पर इनकी सफेद खड़ीयां अभी तक दिखाई पड़ रही हैं। तख्ता भी कम काला न

रहा होगा, तब तो अभी तक खड़ीयां फीकी नहीं पड़ी हैं। (तालियां) जिस दिन दुनिया में बड़ी मनुष्यता पैदा होगी, उस दिन महापुरुष का युग समाप्त हो जायेगा। ऐसा नहीं कि महापुरुष पैदा नहीं होंगे लेकिन दिखाई नहीं पड़ेंगे। सफेद दीवाल पर लिखे हुये होंगे। अतीत का इतिहास दस बीस नामों के आसपास टिका हुआ है, दस बीस सफेद रेखायें हमने पैदा की हैं पूरे मनुष्य जाति के इतिहास में। उंगलियों से गिनी जा सकें इतनी, बाकी पूरा तख्ता सख्त अंधकार से भरा रहा है। उस अंधकार में वह चमकते हुये दिखाई पड़ रहे हैं। यह तो आप भली भांति जानते हैं, दिन में तारे दिखाई नहीं पड़ते हैं। क्या आप सोचते हैं तारे मिट जाते हैं। दिन में भी तारे होते हैं, मिटेंगे कहां ? कोई रोज मिटेंगे, रोज रात पैदा होंगे ! दिन में भी तारे होते हैं लेकिन सूरज की सफेद रोशनी में खो जाते हैं - रात के अन्धेरे में चमकने लगते हैं। और अमावस की रात में उनकी चमक और बढ़ जाती है। जिस दिन सूरज की तरह फैली हुई रोशनी मनुष्यता की होगी, उस दिन महापुरुष के तारे टिमटिमायेंगे नहीं, खो जायेंगे। महापुरुषों को पैदा होने के लिये अंधेरी रात, अमावस की रात बड़ी ही सुविधा पूर्ण है। इसलिए जिन जिन महापुरुषों को पैदा होना हो जल्दी पैदा हो लें। अगर कहीं दुनिया में अच्छा आदमी पैदा हो गया तो फिर महापुरुष पैदा नहीं हो सकता है। महापुरुष के लिये अनिवार्य शर्त है क्षुद्र समाज। इसलिए जिन समाजों में जितने महापुरुष पैदा हुये हों, ठीक से समझ लेना उस समाज में उतनी गहरी क्षुद्रता की जड़ें होना चाहिए। इसलिए जैसे जैसे विकास हो रहा है, महापुरुष कम होते जा रहे हैं, मनुष्य विकसित हो रहा है। मैं नहीं मानता हूं कि पहले के लोग बेहतर लोग थे। मानने का कोई कारण भी नहीं है। मानने का वैज्ञानिक कारण तो यह है कि आने वाले लोग बेहतर होंगे। होना भी यही चाहिए। लेकिन एक और बुनियादी जड़ है जो दिक्कत डालती है। बाप का अहँकार मानने को राजी नहीं होता कि उसका बेटा उससे बेहतर हो सकता है। बेटा मुझसे बेहतर कैसे हो सकता है। हर बाप का ख्याल है। इसलिए ये आगे की तरफ हम सदा यह पतन देखते हैं। लेकिन यह बहुत खतरनाक दृष्टि है। आगे की तरफ विकास देखा जाना चाहिए। और यह है भी ठीक कि बेटे की संभावना बाप से बेहतर होने की ज्यादा क्योंकि हर बेटा अपने बाप के कंधे पर खड़े होकर दुनिया में आता है। बाप ने जो दुनिया देखी है वह तो उसकी है ही और बाप ने जो ज्ञान पाया वह उसका है। बेटा जो ज्ञान पायेगा वह बाप का नहीं है। बेटा प्लस पाइन्ट है, वह बाप में कुछ जोड़ रहा है। बाप की पीढ़ी ने जो भी जाना, जो भी सीखा, जो भी पाया, वह बेटे को मिलेगा और बेटे की पीढ़ी जो पायेगी वह उसमें जुड़ेगा। इसलिए बेटा सदा विकासमान है। लेकिन कुछ घटनायें घटी हैं, जिसकी वजह से हमें अड़चन मालूम होती है, ऐसा लगता है कि बड़ी अनीति हो गई है। इसे भी थोड़ा समझ लेना जरूरी है। दो तीन मित्रों ने यह भी पूछा है कि इतनी अनीति का कारण क्या है ?

अनीति नहीं हो गई है। असल में पुरानी नीति की व्यवस्था असंगत हो गई है और नई नीति की व्यवस्था हम विकसित नहीं कर पाते हैं। बैलगाड़ी बेकार हो गई है और हवाई जहाज नहीं बना पा रहे हैं, बीच में खड़े रह गये हैं। उसकी वजह से अड़चन है। इस अड़चन को ठीक से समझें तो उपयोगी है। पुरानी जो नीति थी वह बड़े अनैतिक आधारों पर खड़ी थी। पुरानी नीति का मूल आधार भय और प्रलोभन था। पुरानी नीति आदमी को डराके नैतिक बना रही थी, कह रही थी नर्क में सड़ा देंगे, स्वर्ग में सुख जुटा देंगे। जो ठीक करेगा वह स्वर्ग का मालिक होगा, जो गलत करेगा नर्क के अग्नि कुंडों में सड़ेगा। पुरानी नीति बचकानी थी, चाईल्डीस थी। आदमी को डराने पर खड़ी थी। बच्चों को डराया जा सकता है। बच्चों को हम कह सकते हैं, चौके में मत जाना, भूत प्रेत है। मिठाई रखी है कुल जमा बचाना है उसको, भूत प्रेत से कोई मतलब नहीं है। बच्चे को डरा देते हैं, बच्चा डर जाता है। लेकिन बच्चा जवान हो गया है। अब आप वही भूत प्रेत की बात किये जा रहे हैं। बच्चा भी कहता है, बिल्कुल पिताजी भूत-प्रेत

है। पिताजी सो जाते हैं जब बच्चा मिठाई खा जाता है और सुबह कहता है भूत प्रेत खा गये होंगे। (हास्य) इसमें कुछ भूल चूक नहीं हो रही है। इसमें सिर्फ नीति की भय करने वाली जो व्यवस्था थी, जो फियर सेन्टर्ड व्यवस्था थी, जिसका आधार ही भय था, वह दुनिया जब बचकानी थी और आदमी का मस्तिष्क बालपन था, प्रौढ़ नहीं था, तब के लिए काम की थी। अब छोटा बच्चा भी पूछता है कि भूगोल पूरी देख ली नर्क तो दिखाई पड़ता नहीं। अब आप डराये जा रहे हैं वही नर्क से। जो शब्द असंगत हो गये हैं, उनके आधार पर नीति खड़ी किये जा रहे हैं। लड़के से कह रहे हैं नर्क चले जाओगे। वह लड़का सोच रहे हैं कि चले जायें तो मजा आयेगा, वहां भी काफी देखने लायक होगा। आप डराये जा रहे हैं कि नर्क चले जाओगे, वह लड़का नहीं डर रहा है, यह बड़े सौभाग्य का लक्षण है। क्योंकि जो डरते थे बच्चे वह कमजोर थे। यह बच्चे जो आज हैं, उनसे ज्यादा ताकतवर हैं। यह नर्क वर्क से नहीं डरे हैं। अब इनको आप नर्क से डरा के नैतिक न बना सकेंगे। अब आपको व्यवस्था बदलनी पड़ेगी। और आपकी बुद्धि में और कोई व्यवस्था नहीं है। इसलिए मुश्किल खड़ी हो गई है। आप पुराना ही दुहराये चले जा रहे हैं। और कब तक आपके पुराने शब्दों को जो थोथे हो गये हैं, जिनमें अब जान नहीं रही है। और हर शब्द की एक उम्र होती है, यह हमें पता नहीं है। और हर सिद्धांत की भी उम्र होती है और हर शास्त्र की भी उम्र होती है। हर सिद्धांत एक सीमा के बाद मरता है। और नये सिद्धांत को जन्म देने की क्षमता होनी चाहिए। हमारे सब सिद्धांत मुर्दा हो गये हैं और नये को हम जन्म नहीं दे पा रहे हैं। इससे बड़ी कठिनाई पैदा हो गई है। अनीति का कारण युग की विकृति नहीं है। अनीति का कारण हमारी नीति की व्यवस्था का जीर्ण जर्जर हो जाना है। कुलसड़ गई है, सब तरफ से गिरने वाली है। लेकिन हम पुराने के ऐसे मोही हैं कि फिर टिमटाम लगा के बीम बलियां गाड़ के उसको सम्हालने की कोशिश में लगे हुये हैं। उसमें खतरा है। वह मकान तो गिरेगा, बच नहीं सकता। और डर यह है कि उसको बचाने की कोशिश में जो नया मकान बन सकता है, वह भी हम नहीं बना पा रहे हैं। हमारे देश में तो हम नई नीति के संबंध में चिंतन ही नहीं कर रहे हैं। बाप पुरानी बातें दोहराये जा रहा है। बेटे के लिए पुरानी बातें बेईमानी हो गई हैं, मीनींगलेस हो गई हैं। इसलिए बाप और बेटे की पीढ़ी के बीच कोई संवाद नहीं रह गया। बाप और बेटे बड़े फासले पर खड़े हैं, अलंघ्य खाई हो गई है। उस अलंघ्य खाई का एक कारण तो यह है कि आपकी जो व्यवस्था थी, उस व्यवस्था से आगे आदमी जा चुका है। बच्चे को पहनने को एक पजामा बनाया था, वह बच्चा हो गया जवान और पजामा आप वही पहने चले जा रहे हैं। अब पाजामा फटेगा। और आप चाहते हैं कि पजामा न फटे, कोशिश कर रहे हैं कि बच्चा ही छोटा बना रहे, वह नहीं हो सकता। व्यवस्था बदलनी पड़ेगी, पेटर्न तोड़ना पड़ेगा, नई व्यवस्था देनी पड़ेगी। और दूसरी बात वह जो पुरानी व्यवस्था थी नीति की और वह जो पुरानी दुनिया थी हमारी, उसके आमूल आधार हिल गये हैं यह हमें पता नहीं है कि हमारे मकान की बुनियाद जा चुकी है। अब ऊपर की दीवालें खड़ी रह गई हैं और हम उनको सम्हाले हुये खड़े हैं। क्या कारण है उन आधारों के हिल जाने का ? जीसस के मरने के बाद अठ्ठारह सौ वर्षों में जितना ज्ञान दुनिया में पैदा हुआ उतना ज्ञान पिछले डेढ़ सौ वर्षों में पैदा हुआ। और जितना पिछले डेढ़ सौ वर्षों में पैदा हुआ उतना पिछले पन्द्रह वर्षों में पैदा हुआ। और जितना पिछले पन्द्रह वर्षों में पैदा हुआ उतना अब प्रति पाँच वर्ष में पैदा हो रहा है। दुनिया पहले अठ्ठारह सौ वर्षों में जितना ज्ञान पैदा करती थी, अब पांच वर्ष में पैदा कर रही है। इसके परिणाम बहु.....ही संभावनाओं से भरे हुये हैं। उन परिणामों की दो तीन बातें समझ लेना चाहिये।

जब ज्ञान बहुत धीमी रफ्तार से बढ़ता था तो सदा बाप बेटे से ज्यादा समझदार होता था। क्योंकि अनुभव से ज्ञान आता था। एक आदमी जो अस्सी साल का है वह बीस साल के लड़के से कह सकता

था, तू कुछ भी नहीं जानता। स्वाभाविक ठीक कहता था गलत भी नहीं कहता था। साठ साल से जो ज्यादा जिया है वह ज्यादा जानता था। क्योंकि ज्ञान इतने धीमे बढ़ता था और ज्ञान का कोई शिक्षण न था। सिर्फ अनुभव से ही ज्ञान उपलब्ध होता था। अनुभव के माध्यम से जो जितना जी लेता था वह उतना ज्ञानी हो जाता था। इसलिए बूढ़ा आदमी आदृत था पुरानी दुनिया में। बच्चे ना समझ थे, बूढ़ा ज्ञानी था। अब हालत बिल्कुल बदल गई है। पिता ने जो पढ़ा था वह अब सब गलत हो गया पांच वर्ष में इतने ज्ञान परिवर्तन पड़ रहा है जितना अट्ठारह सौ वर्ष में पड़ता था। अब बेटा सदा बाप से ज्यादा जानेगा। आगे की दुनिया में अब बाप ज्यादा नहीं जान सकता। बेटा सदा ज्यादा जानेगा। बाप उन्नीस सौ तीसवीं युनिवर्सिटी में पढ़ा था, बेटा उन्नीस सौ सत्तर में पढ़ रहा है। चालीस साल में सारे ज्ञान की स्थिति बदल गई है। बेटा अब बाप से ज्यादा जानेगा और जैसा एक जमाने में बाप के पास बैठके बेटे ने पूछा था, आने वाले पचास वर्षों में बेटे के पास बैठके बाप को पूछना पड़ेगा कि नया क्या है ? ठीक क्या है ? क्योंकि मेरा ज्ञान तो आउट ऑफ डेट हो गया। चालीस साल पहले मैं पढ़ा था स्थिति बुनियादी रूप से बदल गई है। और इसका कोई उपाय नहीं है अब। ज्ञान जब तीव्रता से बढ़ेगा तो नई पीढ़ी ज्यादा जानेगी क्योंकि, उसको नया शिक्षण मिल रहा है। पुरानी पीढ़ी ज्यादा नहीं जानेगी। आज हालत यह है, अच्छी विश्वविद्यालय में शिक्षक और विद्यार्थी के बीच आमतौर से घंटे भर का ही फासला होता है। वह जो शिक्षक घंटे भर पहले तैयारी करके आता है बस उतना ही फासला होता है और घंटे भर के बाद वह फासला भी मिट जाता है। घंटे भर वह पढ़ा चुका, शिक्षक और विद्यार्थी बराबर ज्ञान की हालत में आ जाते हैं। तो अब वह जमाना गया कि विद्यार्थी चरणों में सिर रख के बैठे। अब कंधे पर हाथ रखा जायेगा। वह मित्र की हैसियत हो गई। फासला बहुत कम है। इसलिए गुरु अब चाहे कि विद्यार्थी पैर पड़े और गुरु दक्षिणा में हम अंगूठा काटें तो दे दें, अब नहीं होगा। अब विद्यार्थी कहेंगे, गुरुजी आपने बहुत अंगूठा काटा, अब हम आपका अंगूठा काटेंगे। एकलव्य की कहानी तो हमने पढ़ी है न ! कि गरीब शूद्र लड़के को द्रोणाचार्य ने मना कर दिया शिक्षा देने से। उस बेचारे ने मूर्ति बनाके, जंगल में जा के, किसी तरह सीख लिया। और जब पता चला तो डर पैदा हुआ। क्योंकि अर्जुन से भी ज्यादा कुशल था वह विद्या में और तब द्रोण को फिकर पड़ी कि यह क्या होगा। और एक गरीब लड़का अमीर के बेटे से बाजी मार ले जाये, यह गुरु बरदास्त न कर सके। तो गुरु गया और उसने कहा कि जब मैं तुम्हारा गुरु हूं तो गुरु दक्षिणा दे दो। और अंगूठा काट लिया गुरु दक्षिणा में। और हजारों साल से हिन्दुस्तान में हजारों किताबें लिखी गईं सबने एकलव्य की तारीफ की कि शिष्य हो तो ऐसा हो, लेकिन एक ने भी यह न कहा कि गुरु द्रोण जो हैं, यह गुरु होने का लक्षण है ! एकलव्य जैसा शिष्य हो गुरु कहे चले जा रहे हैं और एक गुरु यह नहीं कहता कि यह बेईमान है गुरु ! यह द्रोणाचार्य बेईमान है। इसने धोखा दिया है उस बच्चे को। इसकी एक भी निंदा नहीं हुई। द्रोणाचार्य गुरु बने रहे, एकलव्य की प्रशंसा होती रही। अब यह वख्त बदल गया है। अब ये बात नहीं चल सकती है। अब यह बात समझ में आ गई कि इसमें बेईमान है गुरु। और अब ऐसा एकलव्य नहीं चाहिए जो ऐसे बेईमान के चक्र में आये और हाथ कटवा ले। यह भूल अब नहीं चलेगी। स्थिति जब बदलती है तो सारे आधार फिर नये करने पड़ते हैं। आज नई पीढ़ी के पास ज्यादा ज्ञान है। इसलिए पुरानी पीढ़ी को नई पीढ़ी को उसी भांति दबाये चले जाने की संभावना नहीं है, जैसे पहले थी। अर्थ भी नहीं है। खतरनाक भी है। और मँहगा पड़ेगा। नई पीढ़ी का सम्मान अनिवार्य हो गया है। भविष्य में बच्चे सम्मानित होंगे, जैसे वह कभी भी नहीं थे। वृद्ध का सम्मान बच सकता है अगर वह बच्चों को सम्मान देना शुरू कर दें। लेकिन अगर वह पुरानी भूल ही दोहराये चला जा रहा है जो कभी ठीक थी और अब ठीक नहीं है अगर वह यही कहे चला जाता है कि हमारी उम्र ज्यादा है, हम ज्यादा जानते हैं तो वह बहुत जल्द ही एकदम ही नासमझ सिद्ध हो जायगा। वह ना समझ सिद्ध हो ही

चुका है। पुरानी सारी की सारी व्यवस्था, पुराना धर्म, पुरानी नीति, नये ज्ञान के जन्म के कारण बड़ी कठिनाई में पड़ गये हैं। हमारे पूरे समाज के ढाँचे पुरानी व्यवस्था में थे। .....एक छोटा गांव है। एक छोटे गांव में अगर पांच सौ आदमी रहते हैं तो हर आदमी हर दूसरे आदमी को आमने-सामने पहचानता है। उस गांव की नीति व्यवस्था एक तरह की होगी। एक दूसरे बड़े नगर में जहां करोड़ आदमी रहते हैं, वहां की नीति व्यवस्था ग्रामीण नहीं हो सकती, यहां कोई आदमी किसी को नहीं पहचानता। एक छोटे गांव में अगर एक लड़का सिगरेट पीता हुआ घूमे तो पूरा गांव उसको जानता है। वह पकड़ लिया जायगा और उसकी घर-घर खबर पहुंच जायगी। लेकिन एक करोड़ वाली बस्ती में कौन लड़का क्या कर रहा है, इसके घर कभी खबर नहीं पहुंचती है। तो पुरानी ग्रामीण व्यवस्था में हमारी नीति विकसित हुई थी। नये जो विस्तार से भरे हुये नगर पैदा हुये हैं, उनमें उसका कोई अर्थ नहीं है। हमें नई नीति उसमें विकसित करनी पड़ेगी। पुरानी नीति काम नहीं दे सकती, उसका कोई अर्थ ही नहीं रह गया है। पुरानी व्यवस्था में बाल विवाह सहज था। दस साल, बारह साल के लड़के और लड़की का हम विवाह कर देते थे। उस कारण से युवक कभी पैदा ही नहीं होता था पुरानी व्यवस्था में। बच्चे से आदमी सीधा बूढ़ा हो जाता था। वह बीच का जो जवानी का वख्त था उनने काट दिया था। क्योंकि बाप कभी भी जवान नहीं होता। बाप की उम्र कोई भी हो बूढ़ा हो जाता है। बारह साल के लड़के की शादी कर दी, वह सोलह, अट्ठारह, बीस साल का होते-होते बाप बन जाता है। उसके ऊपर जिम्मेदारियां आ जाती हैं। वह जिंदगी के कोल्हू में पिर जाता है। नई व्यवस्था में पच्चीस और तीस साल तक लड़के और लड़कियां अविवाहित हैं। इनके ऊपर जिन्दगी का कोई बोझ नहीं है। इनके लिये हमें दूसरी व्यवस्था खोजनी पड़ेगी अन्यथा, उपद्रव निश्चित है। अभी अमरीका के एक बहुत समझदार मनोवैज्ञानिक ने यह सुझाव दिया है, दस साल के लंबे अध्ययन के बाद कि अमरीका को अगर युवकों के उपद्रव से बचाना हो तो हमें एक बार फिर से बाल विवाह के संबंध में विचार करना चाहिये। जब समाज का एक हिस्सा बदलता है तो सारे हिस्से बदलने शुरू हो जाते हैं। जब आप बाल विवाह करते थे—प्रेम की कोई जगह न थी। अब चौबीस और पच्चीस साल के जवान लड़के-लड़कियों को आप चाहें तो वह आठ-दस साल के बच्चों जैसे प्रेम से अपरिचित रह जायें तो आप बिल्कुल पागल पन की बातें कर रहे हैं। यह नहीं हो सकता। आपको प्रेम के लिये जगह बनानी पड़ेगी। आठ-दस साल के बच्चे का विवाह आप कुंडली देख के करवा लेते थे। पच्चीस साल के बच्चे का विवाह भी कुंडली देख के करवायेंगे तो खतरा है। यह नहीं चल सकता। पच्चीस साल का बच्चा अपना निर्णय लेगा। और ध्यान रहे; छोटा सा फर्क पड़ता है जीवन में और सारे तंतु बदलने पड़ते हैं। बैलगाड़ी की दुनिया थी तो शूद्र और ब्राह्मण बच सकते थे। अगर आज फिर बैलगाड़ी आ जाय, हवाई जहाज और ट्रेन और कार और बस हट जाय तो ब्राह्मण और शूद्र कोई नहीं मिटा सकता। न कोई कानून मिटा सकता न कोई समाज सुधार मिटा सकता है। ब्राह्मण और शूद्र रहेंगे। न बुद्ध मिटा सके न महावीर मिटा सके, उसका कारण था कि टेक्नोलॉजी ब्राह्मण और शूद्र को बचाने में सहयोगी थी। बैलगाड़ी की दुनिया में ब्राह्मण और शूद्र अलग रह सकते थे। लेकिन ट्रेन में शूद्र और ब्राह्मण अलग नहीं रह सकते हैं। शूद्र और ब्राह्मण को एक साथ, एक ही बस में बैठना है। ब्राह्मण को खाना खाना पड़ेगा, शूद्र के पास बैठके। इन्कार नहीं कर सकता, नहीं तो वह कहेगा आप उतर जाइये बस से। क्योंकि मैंने भी टिकिट ली है। असल में रेलगाड़ी के टेक्नीकल और बड़े विस्तृत साधनों ने शूद्र और ब्राह्मण के बीच की खाई को पाट दिया। महात्मा नहीं मिटा रहे हैं, इस शूद्र और ब्राह्मण को। पुरानी दुनिया में जब बाल विवाह चलता था तो ब्राह्मण ब्राह्मण के घर शादी कर सकता था क्योंकि शादी बाप को करनी थी। लेकिन अब पच्चीस साल के लड़के और लड़कियाँ युनिवर्सिटी में पढ़ेंगे तो प्रेम नहीं देखता कि कौन ब्राह्मण है। और अगर प्रेम भी देखता हो कि कौन शूद्र और कौन ब्राह्मण है,

वह प्रेम नहीं है। तो यह नहीं चल सकता। वह टूट जायेगा, वह गिरेगा। और जब ढांचा गिरता है तब हम इतने घबड़ा जाते हैं कि हमें यह ख्याल ही नहीं रहता कि जो गिर रहा है उसे और जल्दी गिराके मिटा दें और नये को बनायें। हम पुराने को बचाने में लग जाते हैं। और पुराने को बचाने की जो जिद्द है, पुराने को बचाने की जो आकांक्षा है वह और पुराने को तोड़ने की प्रतिक्रिया बच्चों में पैदा करती है। ये नक्सलवादी जो हैं, वो पुराने को बचाने वाले लोगों की वजह से पैदा हो रहा है। वह क्रोध में तोड़ेगा। आप बचाने में लगे हैं, वह तोड़ने में लगेगा। अगर आपको जिंदगी को सहज गति देनी है तो समझ लें कि जो पुराना हो गया है, उसे विदा करना जरूरी है। माना कि बहुत दिन उसने साथ दिया। इसलिये सम्मानपूर्वक विदा दें, उसने बहुत साथ दिया है तो मरघट तक सब साथ उसको पहुंचा आयें, कब्र पर बैठके थोड़े रो लें, फूल चढ़ा दें, दिया जला दें, स्मारक बना दें, मूर्ति खड़ी करनी है करा दें, वहाँ जो भी करना है कर आयें। अब घर में उसे नहीं रखा जा सकता। असल में लाश जब हो जाय आदमी कितना ही प्यारा रहा हो तो भी मरघट पहुंचाना पड़ता है। छाती पीटते, रोते पहुंचा आते हैं। अगर हम जिद्द करें कि घर में जो भी मरेगा क्योंकि प्यारा था इसलिये घर में ही लाश को रखेंगे तो आप समझ लें कि उस घर में फिर लाशें इतनी इकट्ठी हो जायेंगी कि जिन्दा आदमी का रहना मुश्किल हो जायगा। और एक दिन अगर जिन्दा आदमी उन लाशों को काट काट कर बाहर फेंक दें और आग लगा दें उस घर में तो आप मत समझना कि वह उनकी भूल है। आपने उनका जिन्दा रहना मुश्किल कर दिया है। हमारे मुल्क में ऐसा ही हुआ है। पुराना इतना कट्ठा हो गया है, इतना जरा जीर्ण, जिसे बहुत पहले मरघट चला जाना चाहिये था, वह भी खड़ा है। सब कट्ठे हैं। उस सब इकट्ठे में वह जो नई जिन्दगी है, ह क्रीपल हुए जा रही है, पंगू हुई जा रही है। और प जिद्द बाँधे बैठे हैं कि हम तो पुराने ढंग से चलेंगे। र जिन्दगी बदल गई है उसे सीखने को राजी नहीं हैं।

मैंने सुनी है एक कहानी, आपने भी सुनी होगी लेकिन शायद पूरी न सुनी होगी। मैं उसे पूरी कर देना चाहता हूं। सुना होगा आपने भी कि एक सौदागर है टोपियों को बेचने वाला गया है बाजार में। रूका है लौटते में एक वृक्ष के नीचे सोया है। बंदर उतर के उसकी टोपियाँ ले गये। जब देखी एक टोकरी उसने अपनी खाली तो बड़ी मुश्किल में पड़ा। लेकिन उसे ख्याल आया कि बंदर नकलची होते हैं। तो उसने अपनी टोपी निकाल के सड़क पर फेंक दी। सारे बंदरों ने अपने सिर से टोपियां निकाल फेंक दी। उसने टोपियां इकट्ठी कीं अपनी टोकरी में, घर वापिस आ गया। इतनी कहानी आपने सुनी है और कहानी आगे है, होशियार लोग उसे बचा गये हैं। वह कहानी यह है कि सौदागर का बेटा बड़ा हुआ और जैसे कि अच्छे बेटे बाप का ही काम करते हैं, उसने भी बाप का ही काम शुरू किया। वह टोपियाँ बेचने गया। लौटके उसी झाड़ के नीचे रुका, जैसे कि अच्छे बेटे रुकते हैं वहीं जहां बाप रुकते हैं। वहीं टोकरी रखी उसने जहां बाप ने रखी थी। बंदरों के भी बेटे ऊपर आ चुके थे। सोया सौदागर का बेटा, बंदरों के बेटे उतरे—टोपियां लेके चले गये। आंख खुली, बाप की कहानी याद आई। बाप ने समझाया था बेटा अगर कभी बंदर टोपी ले जाय तो घबड़ाना मत, अपनी टोपी फेंक देना—बंदर अपनी टोपी फेंक देते हैं। उसने अपनी टोपी निकाल के फेंकी लेकिन चमत्कार हुआ, एक बंदर वह टोपी उठा के ले गया (हास्य)। बाकी बंदरों ने टोपी न फेंकी। क्योंकि, उनके बाप भी उसे कह गये थे कि बेटा सावधान—सौदागर का बेटा रुके तो अब टोपी मत फेंकना। (हास्य व तालियाँ) बंदर सीख चुके थे और आदमी पुराने को दोहराये चला जा रहा है। इस मुल्क में ऐसा ही हुआ है। बाप जो कह गया है वह हम करेंगे। बिना इसकी फिक्र किये, स्थिति बदल गई, संदर्भ बदल गया, व्यवस्था बदल गई, क्या कर रहे हो! ये अब नहीं होगा। कुछ सोचना पड़ेगा, विचार करना पड़ेगा। नये नियम खोजने पड़ेंगे। नई नीति संहिता बनानी पड़ेगी। नर्क और स्वर्ग अलग करना पड़ेगा। सीधे विवेक पर नीति को खड़ा करना पड़ेगा। समझ

पर, अन्डरस्टेंडिंग पर खड़ा करना पड़ेगा। और व्यक्ति को परलोक से डरवाया जाने का अब बहुत कम उपाय, अब इस लोक को ही सुखद बनाने की कल्पना देनी पड़ेगी। यह लोक ही कैसे अधिकतम सुख से भर सके उसके आधार नीति में खोजने पड़ेंगे। और नीति में बुनियादी फर्क पड़ने लगेंगे। पुरानी अपेक्षायें, आकांक्षायें छोड़नी पड़ेंगी।

मेरे एक मित्र अमरीका की एक यूनिवर्सिटी में गये थे। शिक्षक हैं, वहां अध्ययन करने गये थे। विद्यार्थी और शिक्षक के बीच के संबंधों को। पहले ही दिन क्लास में गये तो देखा कि अजीब माहौल हैं! कोई सिगरेट पी रहा है क्लास में और एक लड़का टेबल पर जूतों को टिकाये आराम से टिका हुआ बैठा है और शिक्षक पढ़ा रहा है। उनका तो पुराना गुरुजी बैठा है भीतर वह तो खौल उठा। उन्होंने कहा : यह क्या हो रहा है? यह कोई संबंध हुआ! कक्षा पूरी हुई तो उन्होंने उस प्रोफेसर से पूछ कि यह कैसी **इनडिसीप्लीन** है, यह कैसी अनुशासनहीनता है? शिक्षक ने कहा : कौन सी अनुशासनहीनता! मेरे मित्र तो हैरान हो गये। उन्होंने कहा : आपने देखा नहीं अंधे हैं क्या? लड़के सिगरेट पी रहे हैं! शिक्षक ने कहा कि मैं यहां पढ़ाने के लिए हूं। लड़के सिगरेट पीते हैं, या नहीं पीते हैं, इसकी रखवाली के लिए कोई पुलिस वाला नहीं हूं। मैं अपना काम पूरा कर रहा हूं और लड़के इतनी उम्र के हैं कि वह जानते हैं कि अगर सिगरेट पी के ठीक से कैसे पढ़ सकते हैं तो यह उनका काम है, सिगरेट नहीं पी के वे ठीक से पढ़ सकते हैं यह उनका काम है। वह मुंह से धुआं भीतर ले जा रहे हैं कि बाहर ले जा रहे हैं, इससे मेरा क्या प्रयोजन? मैं पढ़ाने का काम कर रहा हूं, वह पढ़ने का काम कर रहे हैं। फेल उन्हें होना है, पास उन्हें होना है। जिन्दगी उनकी उनके हाथ में है। वह कोई बच्चे नहीं हैं। बीस साल के ऊपर के विद्यार्थी को बच्चा नहीं कहा जा सकता है। अब हमें कुछ कहने की जरूरत नहीं है। यह वह समझेगा। और उनने कहा कुछ लोग तो बाहर टांगें फैलाये हुये जूते टिकाये हुये बैठे थे! उनके संबंध में? तो उस प्रोफेसर ने कहा कि वे लड़के मुझे बहुत प्रेम करते हैं और मुझे अच्छा आदमी मानते हैं इसलिए मेरे साथ एटहोम हो सकते हैं। कोई मैं दुश्मन नहीं हूं उनका कि वह आराम से न बैठ सकें। मुझे क्या प्रयोजन है कि वह जूते कहां रखे हैं? अगर वह कुर्सी से टिके ठीक से पढ सकते हैं तो बहुत अच्छा है मेरा काम है कि वह ठीक से पढ़ें और मैं कोई दुश्मन नहीं हूं उनका तो मैं क्यों बाधा डालूं? ये नई स्थिति के साथ नये संदर्भ में सोचना है अब हमारा गुरु वही कहे चला जा रहा है कि सीधे खड़े हो, नीचे देखो, फिर यह तो होने वाला ही नहीं है फिर मुश्किल हो गई शिक्षक से जो काम होना हो वह भी नहीं हो पायेगा, वह नहीं हो पा रहा है। पुरानी अपेक्षायें छोड़नी पड़ेंगी नई अपेक्षायें स्वीकार करनी पड़ेंगी। नई स्थिति में नई व्यवस्था अनिवार्य है। लेकिन हमारा पुराने का मोह भारी है। हमने हजारों साल से कोई क्रांति नहीं की सच तो यह है कि हमने कोई क्रांति ही नहीं की। हम शायद पृथ्वी पर अकेले देश हैं जहां क्रांति नहीं होती। क्रांति हीन हमारा इतिहास है। उसमें कोई रीवोल्युशन नहीं है। उसमें कुछ ऐसा नहीं है कि हमने कोई छलांग ली हो। हम कुन-कुने-कुन-कुने चलते हैं। धीरे-धीरे-धीरे-धीरे घसीटते हैं। दौड़ नहीं हैं। गीत नहीं है। एक अगीत से भरा हुआ समाज है। लेकिन अब इस दुनिया में अगर हमें जीना है तो हमें यह छोड़ना पड़ेगा और छलांग लगाने की हिम्मत लेनी पड़ेगी। यह छलांग लेने की हिम्मत पुराने के मोह को तोड़ने से शुरू होगी। और मैं नहीं कहता हूं कि पुराने के मोह को तोड़ने से कोई अधार्मिक होता है। आज जो पुराने के मोह से भरा है, वही अधार्मिक है। धर्म तो निरंतर जो सत्य है आज उसकी खोज, धर्म तो निरंतर सामूहिक सत्य का अविष्कार है। जो कल था सत्य अगर वह आज असत्य हो गया है, उसे छोड़ें। जो आज सत्य है उसे खोजें, उसके अनुसार जीवन को निर्मित करें, बनायें, खड़ा करें तो आज जितनी नैतिकता पैदा हो सकेगी मनुष्य में उतनी कभी भी पैदा नहीं हुई थी। तो मैं मानता हूं कि पहले नैतिक लोग थे, आज कोई अनैतिकता हो गई है, या अभी

पिछली पीढ़ी बहुत नैतिक थी और यह पीढ़ी अनैतिक हो गई है। ध्यान रहे, बीज की परख फल से होती है। अगर यह पीढ़ी अनैतिक हो गई है तो पिछली पीढ़ी के बीज अनैतिकता के रहे होंगे। अन्यथा इसके अनैतिक हो जाने का कोई कारण नहीं है। लेकिन मैं मानता हूं कि प्रश्न पीढ़ीयों का नहीं है, प्रश्न उन सिद्धांतों का है जो बेईमानी हो गये हैं, इररीलेवेन्ट हो गये हैं। उन सिद्धांतों को हम थोपे न चले जायें। लेकिन हमारा सदा से आग्रह रहा है वह।

अंतिम बात मैं आपसे कहूं, अपनी बात पूरी करूं। हमारा सदा से यह आग्रह रहा है कि जो पुराना है वह ठीक है। यह बड़ा खतरनाक और मंहगा आग्रह है। ठीक के पुराने होने की कोई अनिवार्यता नहीं है। नया भी ठीक हो सकता है। और अगर नया ठीक मिलता हो तो पुराने ठीक को छोड़ना पड़ता है। छोड़ना चाहिये। नये को निर्माण करना चाहिये, पुराने से हटना चाहिये। अगर हम नये को निर्माण कर लें तो नई पीढ़ी के मन में उसका प्रभाव होता है। नई पीढ़ी उस पर चलने के लिये आतुर होती है। लेकिन हमारा यह भी ख्याल रहा है कि सिद्धान्त सदा सत्य है और अगर गलती करता है तो आदमी करता है, सिद्धान्त कभी गलत नहीं होता। यह बहुत ही संघातक बात है। सिद्धान्त भी गलत होते हैं। और कई बार तो ऐसा होता है कि सिद्धान्त की गलती के कारण ही आदमी को गलत होना पड़ता है। सुना है एक राजमहल के पास से एक आदमी गुजर रहा है, गरमी के दिन हैं और वह जोर से चिल्ला रहा है कि अनूठे पंखे खरीद लो। राजा ने नीचे देखा कैसे अनूठे पंखे हैं! पूछा : क्या खूबी है? उसने कहा कि सौ-सौ रुपये के हैं। राजा ने कहा : ऊपर आओ। मंहगी चीजें खरीदने का उसे शौक था। लेकिन सौ रुपये का पंखा साधारण सा आदमी बेचता है। देखा पंखा बहुत साधारण—दो-दो पैसे में जो मिलता है, वही है। उसने कहा : धोखा दे रहे हो? खुली धूप में, भरी दोपहरी में लूट रहे हो लोगों को? सौ रुपया इसकी कीमत! इसकी क्या खूबी है? उस पंखे वाले ने कहा कि साब पंखे के शरीर को मत देखें, आत्मा को देखें। उसने कहा : और मुसीबत पंखे की कौन सी आत्मा है? उसने कहा : यह पंखा ऐसा है कि सौ साल इसकी गैरन्टी है चलने की। सौ साल के पहले अगर एक दिन भी पहले टूट जाये तो पैसा वापिस। राजा ने कहा कि अद्भुत साहसी मालूम पड़ते हो! या तो हद् दरजे के बेईमान हो या हद् दरजे के पागल हो। यह पंखा सौ साल चलेगा! खैर रख जाओ, यह सौ रुपये ले जाओ। लेकिन भूल मत जाना, दो चार दिन में पता लगा लेना। उसने कहा : मैं तो रोज ही यहाँ से निकलता हूं; आप भी भूल मत जाना। जब मैं आवाज दूं तो बुला लेना। वह पंखे वाला दूसरे दिन भी निकला। वह पंखा तो उसी रात टूट गया, उसकी डंडी अलग हो गई। राजा ने कहा : हद् का आदमी क्या दूसरे दिन आयेगा नहीं। लेकिन वह आया। उसने फिर आवाज दी कि अनूठे पंखे ले लो। राजा ने बुलवाया; कहा कि यह तुम्हारा पंखा टूट गया। उस पंखे वाले ने कहा कि मालूम होता है, आपको पंखा झलना नहीं आता। पंखा कैसे झला था आपने? राजा ने कहा : और हद् हो गई, मैं पंखा करना नहीं जानता। पंखा लेकर राजा ने बताया। वह हंसने लगा पंखे वाला, उसने बताया : गलत; पंखे को हाथ में पकड़ो जोर से और सिर को हिलाओ। (हास्य) सौ साल पंखा चलेगा, सिर टूट जायेगा, पंखा नहीं टूट सकता। (हास्य) गैरन्टी पक्की है। हम भी ऐसे ही लोग हैं। हम कहते हैं आदमी टूट जाय—सिद्धान्त नहीं टूट सकते हैं। गैरन्टी है हमारे सिद्धान्तों की। लेकिन पकड़ के सिद्धान्तों को और आदमी का सिर हिलाने की कोशिश कर रहे हैं। ऐसे हमने हजार सिद्धान्त बना रखे हैं जो गलत हैं। गलत इसलिये हैं कि वो अमानवीय हैं। गलत इसलिये हैं कि अस्वाभाविक हैं। गलत इसलिये हैं कि अवैज्ञानिक हैं। लेकिन हम उनको दोहराये चले जाते हैं; चिल्लाये चले जाते हैं और हम आदमी को दिक्कत में डाल देते हैं। जैसे उदाहरण के लिये एक दो बात आपसे मैं कह दूं तो ख्याल में आ जाय। हमने जो व्यवस्था बनाई है, उसमें हमने आदमी की जो सहज वृत्तियाँ हैं,

उन सबके विपरीत सिद्धान्त बनाये । सारी सहज वृत्तियों के विपरीत सिद्धान्त हैं। आदमी में काम वासना है तो हमारा सिद्धांत ब्रह्मचर्य का है। बच्चों की छाती पर हम ब्रह्मचर्य थोपना शुरू कर देते हैं। बिना इस बात की फिक्र किये कि ब्रह्मचर्य का मतलब क्या है और बच्चे पर थोपने से इसका परिणाम क्या होगा। बिना इस बात की फिकर किये कि क्या यह संभव है जो हम बच्चों को समझा रहे हैं। बूढ़ों को जो संभव नहीं हो पाता वह हम बच्चों को समझा रहे हैं और उनकी छाती पर थोप रहे हैं। और हम भी जानते हैं कि यह नहीं होगा और बच्चे भी थोड़ी देर में जान लेते हैं कि सिद्धांत बातें करने के लिये हैं। काम करने की बात और है, सिद्धांत और है। इस तरह हमारे व्यक्तित्व में एक दुविधा और दोहरापन पैदा हो जाता है। एक डबल बाइन्ड परसॉनालिटी पैदा हो जाती है कहो कुछ, करो कुछ। हमें बजाय ब्रह्मचर्य समझाने के, काम वासना का पूरा सत्य समझा देना चाहिये। जो सत्य है वह समझा देना चाहिये। हो सकता है उस वासना के सत्य को ठीक से समझ के कोई कभी ब्रह्मचर्य को भी उपलब्ध हो जाय। लेकिन, ब्रह्मचर्य के आरोपण से सिर्फ विकृति होने की संभावना है। ब्रह्मचर्य के आने की कोई संभावना नहीं है। लेकिन हम कहते हैं; हमारे सिद्धांत पक्के हैं। आदमी गलत हो सकता है, सिद्धांत गलत नहीं हो सकता है। हम अजीब बातें थोपे चले जाते हैं। हम हर आदमी को यही समझाते हैं, सिकोड़ो अपने को। फैलाव के हम विरोधी हैं। हम कहते हैं दो रोटी से काम चलता हो तो डेढ़ से चलाओ और डेढ़ से चलता हो तो एक से ही चलाओ। अगर नंगे रहकर चल जाय तो नंगे रहकर चलाओ। बिना मकान के चल जाय तो बिना मकान के चलाओ। हम आदमी से कहते हैं; आवश्यकताओं को सिकोड़ो, सिकोड़ते चले जाओ। आवश्यकताओं को अगर कोई पूरी तरह सिकोड़ ले तो सिर्फ मरेगा और कुछ भी नहीं होगा। जीवन आवश्यकताओं का विस्तार है। और जितनी आवश्यकतायें फैलती हैं, उतना आदमी गतिमान होता है। आवश्यकतायें फैलती हैं तो आदमी विकासमान होता है। सच तो यह है कि मोक्ष या ब्रह्म को पाने की आकांक्षा—आकांक्षाओं की अंतिम परिणति है। आखिरी विस्तार है परम को पाने का। लेकिन हम कहते हैं सिकोड़ो। सिकोड़ते चले जायें—गांधीजी और बल्लभभाई पटेल जेल में एक साथ थे। गांधी जी रोज सुबह दस छुहारे फुलो के खाते थे। बल्लभभाई पटेल को बार-बार लगता था कि वह सूखते जा रहे हैं, हड्डी होते जा रहे हैं। तो उन्होंने एक दिन बारह छुहारे फुला दिये कि क्या हर्जा है, कौन गिनता है। बारह खा लेंगे तो थोड़ा तो फायदा होगा। दो छुहारे ज्यादा चले जायेंगे। लेकिन गाँधीजी से बचाव न था। उन्होंने फौरन देख के कहा कि छुहारे ज्यादा मालूम पड़ते हैं। गिनती की गई बारह निकले। उन्होंने कहा: किसने दो ज्यादा डाले? बल्लभभाई पकड़ में आ गये, उन्होंने कहा कि मैंने ही डाले हैं। मैंने सोचा थोड़ा सा ज्यादा ले लेंगे तो अच्छा होगा। और फिर बल्लभभाई ने कहा कि दस और बारह में फर्क ही क्या हैं? एक मिनट गांधी जी ने सोचा और उन्होंने कहा कि बिल्कुल ठीक कह रहे हो, तो आज से मैं आठ ही ले लूंगा। जब दस और बारह में कोई फर्क नहीं है तो आठ और दस में भी कोई फर्क नहीं है। तो फिर कल से छः ले लें, फिर परसों चार ही ले लें, फिर दो ही ले लें, फिर लेना बंद करें। क्योंकि जब दस और बारह में कोई फर्क नहीं तो न लेने और लेने में भी कितना फर्क बचेगा? फर्क नहीं बचेगा आखिर। सिकोड़ने की वृत्ति आत्मघाती है। हमारा मन स्यूसाईडल है। यह हमारा मुल्क बिल्कुल आत्म हत्या की सोच रहा है सब तरफ से। इसलिये हम मरे। गुलाम रहे, गरीब हुये, सब तरह का दुःख झेला, वह हमारे सिद्धांत उसके पीछे कारण था। नहीं, जिन्दगी विस्तार चाहती है। एक बीज को बो दें तो करोड़ बीज हो जाते हैं; इतना जिन्दगी विस्तार मांगती है। यह सारा जगत विस्तीर्ण हो रहा है। ब्रह्म का मतलब ही है कि वह जो निरन्तर विस्तीर्ण हो रहा है। सब फैल रहा है। इस फैलाव के जीवन में हमने सिद्धांत पकड़े हैं सिकड़ाव के, संकोच के, उन्होंने हमारी गर्दन कस दी है। नहीं, भविष्य उनके साथ नहीं है। इस देश को अपनी समग्र नीति, समग्र धर्म, अपना समग्र चिन्तन फिर से कसौटी पर कसना

पड़ेगा और फिर से नये जीवन, नये विचार, नये जगत के योग्य गतिमान सिद्धांत, गतिमान दृष्टि और गतिमान दर्शन को पैदा करना होगा। यह हो सके तो ही हमारा भविष्य है। यह न हो सके तो हम एक मरे हुये समाज हैं और आगे हमारा कोई भविष्य नहीं है। आगे हम बिल्कुल नष्ट हो सकते हैं।

यह थोड़ी सी बातें मैंने कही इन चार दिनों में इस आशा से नहीं कि आप मेरी बात मान लेंगे। यह आशा भी वही पुराने मस्तिष्क की आशा है। इस आशा नहीं कि मेरी बात पर आप विश्वास कर लेंगे क्योंकि, जो आदमी अभी दूसरे को विश्वास करने की मजबूरी पैदा करता है वह दूसरे आदमी को संघातक नुकसान पहुंचाता है। इस आशा से भी नहीं कि जो मैं कहता हूं वह अनिवार्य रूप से सत्य होना ही चाहिये। इस तरह के अनिवार्य रूप से सत्य के दावे करने वाले लोगों ने हमारी बुद्धि को कुंठित किया है। नहीं, मैंने इस आशा से यह बातें कही हैं कि आप मेरी बातों को सोचेंगे। जल्दी से स्वीकार न कर लेंगे, जल्दी से अस्वीकार न करेंगे, सोचेंगे। जल्दी से हां और न में निर्णय न करेंगे, थोड़ा मन्थन करेंगे। हो सकता है; मेरी सारी बातें गलत हों। गलत हों तो भी आपको फायदा होगा। क्योंकि, उनको गलत समझने के लिए चिन्तन करना पड़ेगा। चिन्तन से मस्तिष्क विकसित होता है प्रतिभा विकसित होती है। और अगर ज्ञात हुआ कि कुछ सही है तो वह सही आपका हो जायगा। मेरा नहीं रह जायगा। और जो सत्य स्वयं के विवेक से सत्य बनता है, वही सत्य जीवन को रूपांतरित करने की क्षमता रखता है। सत्य उधार हो तो मृत होता है, सत्य अपना हो तो ही जीवन्त होता है। परमात्मा करे; जीवन्त सत्य की खोज में आपकी ऊर्जा आपकी प्रतिभा जगे। आप विश्वास करने वाले लोग, अंधी श्रद्धा करने वाले लोग ही नहीं आंख खोलकर जीवन को खोजने वाले लोग बनें ऐसी कामना करता हूं।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

●●●

जो भी है : प्रभु से है

(श्री समीरकुमार, अकोला—जिनने लिखा कि सैक्स उनकी दुर्बलता है—को आचार्य श्री द्वारा दिया गया उत्तर)

मेरे प्रिय,
स्वयं को स्वीकारो—
प्रसन्नता से !
अनुग्रह से,
जो भी है, शुभ है।
काम भी, क्रोध भी
क्योंकि जो भी है, प्रभु से है।

रजनीश के प्रणाम

संन्यास : एक अनुभव

"जन्मों से लदे बोझ से एकदम निर्भार हो गई।"

(मां योग क्रांति, जबलपुर

हृदय में उठा है भावों का वेग, रोकती हूं तो आंसू बहते हैं, कहती हूं तो शब्द नहीं मिलते। चुप भी रहूं तो कैसे ? कुछ तो बोलो मेरे प्रभु !———नहीं-नहीं तू तो हर पल इशारे करता है सभी दिशाओं से पुकारता है। आया है हमारे बीच हमारे ही वेष में।

कितनी बार किन-किन रूपों में तू आया इस पृथ्वी पर—अंधों के बीच, गूगों के बीच, बहरों के बीच। कितना है धैर्य तुझमें **कभी खोता नहीं !** कितना है साहस **कभी चुकता नहीं ! कितनी है करुणा, कितना है प्यार।** असीम है तेरी अनुकम्पा तेरे सामने कोई पात्र नहीं, कोई अपात्र नहीं—सभी हैं समान———

तेरी लीला अपार है, कभी बुद्ध, कभी महावीर, कभी कृष्ण, कभी क्राइस्ट अलग-अलग समय में अनेक तरह से तूने आवाजें दीं। कुछ थे जिन्होंने सुना, कुछ थे जो आवाज सुनकर भागे, कुछ थे जो तुझमें डूब सके, लेकिन कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने शैतान समझकर तुझे सूली पर लटका दिया। गालियां दीं, सताया, इल्जाम लगाये तरह-तरह के पर तू सब पर केवल हंसा और 'नासमझ हैं' कह कर उन्हें भी क्षमा कर दिया।

इतना सब करने पर भी तू फिर आ गया हम नासमझों के बीच। कितनी है तेरी करुणा·····इस बार तो तू और भी नये रूप में आया है। एक साथ सभी के दर्शन होते हैं तेरे भीतर। कभी लगता है कृष्ण, कभी महावीर, कभी बुद्ध, कभी क्राइस्ट। **डर लगता है मेरे प्रभु क्या हम नासमझ फिर भी तेरे साथ वही करेंगे ?**

नहीं-नहीं फिर भूल हो गई। करेंगे नहीं कर ही रहे हैं। **हम सोये हुये लोगों के बीच जब भी तू आयेगा हम यही करेंगे।** बाद में मूर्ति बनाकर तेरी पूजा करेंगे। यह सब खेल कब-तक चलता रहेगा ? "मेरे प्रभु।"

क्या कुछ हम तेरे लिये नहीं कहते हैं—क्या छोड़ा है बाकी। तू है कि बस हंसता है। फिर भी प्यार से पास आने का आमंत्रण देता है। जो बोला नहीं जा सकता उसे भी कहता है, **न समझें तो मौन से कहता है।** पर सुनने वाले कान नहीं, देखने वाली आंखें नहीं। हम हैं अपने में बन्द, सीमित दायरों में बंधे हुए और तू है असीम। **कैसे समझें तेरी भाषा ?**

कितनी बार तूने बुलाया पर चूक गये हर बार। नहीं समझ सके तेरी भाषा। समझ में आती भी तो कैसे। बुद्धि बीच में आकर सब अस्त-व्यस्त कर जाती। मन कहता····नहीं मुझे छोड़कर मत जाना, नहीं तो मेरा क्या होगा ? मान लेती बुद्धि की, फंस जाती मन के चक्कर में—फिर रोती चिल्लाती। दोष देती तुम्हें। बचा लेती अपने को।

इस बचाने में बढ़ती थी दूरी, दूरी से होती थी पीड़ा। फिर उस दूरी का कारण भी खोजती थी तुझमें। तुझसे दूरी सहन भी न होती पर अपने को छोड़ भी न पाती। कितना है अहंकार का दुख फिर भी छूटता नहीं !

मैंने तो कई बार हिम्मत हारी पर तू कभी निराश नहीं हुआ। उसी आशा ने बचा लिया, नहीं तो फिर चूक गई होती।

आचार्य श्री **रजनीश** के रूप में आये हुए हम सबके बीच जो परमात्मा हैं **उन्हें पहचान पाना बड़ा कठिन है।** पहले तो जब भी आये तब हम सबसे कुछ अलग भी दिखाई पड़ते थे—संसार को छोड़कर चले गये थे जंगल में, परन्तु इस बार तो हमारे बीच में ही रहते हैं। हमारी तरह सोते हैं, जागते हैं, उठते हैं, बैठते हैं, खाते हैं, पीते हैं, हंसते हैं, बोलते हैं। इससे लोग बड़े भ्रम में पड़ जाते हैं।

लेकिन सच में ही क्या वे इस सबके बीच रहकर भी इसमें हैं! नहीं जरा भी नहीं सब करते हुये भी सबसे अलिप्त हैं। करुणा बस ही हमसे कुछ कहते हैं। किसी के ऊपर कभी कुछ थोपते नहीं। जो भी उन्हें ठीक लगता हमसे कह देते हैं। उसके बाद कोई भाव—कोई रेखा उनके चेहरे पर नहीं छूटती जिससे लगे कि वे उसे मनवाना भी चाहते हैं। वे हमेशा कहते हैं प्रत्येक व्यक्ति बेजोड़ है वह अपनी तरह होने को पूर्ण स्वतंत्र है।

आचार्य श्री ने संन्यास भी दिया लेकिन किसी के गुरू बनकर नहीं **केवल साक्षी ही हैं।** ऐसी उन्होंने स्पष्ट घोषणा की। उनकी ओर से गुरु का या गुरुडम का कोई भाव नहीं है। हाँ किसी को उनके प्रति गुरु का भाव आ जाये और अपने को कोई उनका शिष्य कहे उसके भाव को भी वे चोट नहीं पहुंचाते। वह उसकी मर्जी उसे भी पूर्ण स्वतंत्रता है।

युक्रांद में स्वामी आनन्द विजय जी के संन्यास लेने के बाद के अनुभव को पढ़कर मुझे भी कुछ लिखने की प्रेरणा हुई। उसे मैं लिखने का प्रयास कर रही हूं। वैसे अनुभव को शब्दों में कैसे व्यक्त करूँ? बड़ी कठिनाई अनुभव हो रही है, फिर भी जो लाभ मुझे संन्यास लेने के बाद हुये हैं उन्हें कह रही हूं।

मात्र उनके लिए जिन्हें यह भ्रम हो गया है कि केवल भगवा कपड़े बदल लेने से और गले में माला डालने से संन्यास का क्या संबंध है। संन्यास तो मन की बात है, नहीं मैं कहना चाहूंगी कि कपड़ा बदल लेना जरूर ऊपर से ऐसा ही दिखाई देता है। लेकिन उससे जो परिवर्तन आते हैं उनकी कल्पना करना भी बिना कपड़ा बदले असंभव है।

आचार्य श्री ने जबसे संन्यास दिया हैतबसे तरह-तरह की चर्चायें लोगों के बीच में हैं। लोग पुराने संन्यास की धारणा से बहुत घबड़ाये हुए हैं। कई लोग कहते हैं आचार्य श्री जिसका विरोध करते थे वही खुद भी करने लगे हैं। लेकिन मैं कहना चाहूंगी उन्होंने सन्यास के नाम पर जो पाखंड चल रहा था उसे तोड़ने के लिए ही यह संन्यास दिया है। वे सदा पाखंड के विरोध में थे, संन्यास के नहीं। सन्यास जैसी पवित्र चीज के विरोध में वे हो ही कैसे सकते हैं।

आचार्य श्री जिस तरह के सन्यास की बात कर रहे हैं वह एकदम नई है। उसने पुराने संन्यास की सारी धारणाओं को तोड़ दिया है। यह संन्यास जीवन से तोड़कर भागने वाला नहीं। (पलायन नहीं परिवर्तन है।) संन्यास के साथ एक उदासी का भाव पकड़ गया है, यह संन्यास उदास नहीं वरन् आनन्द और प्रेम से भर देने वाला है। **संन्यासी संसार के बीच ही रहेंगे। ध्यान ही उनकी मुख्य साधना होगी।**

ध्यान से जो परिवर्तन सहज ही आ जायें वही संन्यासी की चर्या होगी। उसे कुछ दबाना नहीं, कुछ छोड़ना नहीं। स्व-विवेक से जो छूट जाये। कोई नियम नहीं, कोई व्रत नहीं—उनकी ओर से कोई बंधन नहीं है।

लेकिन संन्यास और ध्यान के बाद चित्त में जो परिवर्तन आते हैं वह बिना अनुभव के समझ में नहीं आ सकते। वह तो अनुभव करने पर ही प्रतीत होते हैं।

आज से करीब ४ महीने पहले एक दिन रात्रि को मुझे भाव आया कि मैं भी संन्यास ले लूं। मैंने अपने भाव को आचार्य श्री के सामने व्यक्त किया। वे इतनी सहजता से बोले ठीक है ले ले—जैसे कि उसमें कुछ करना नहीं है। कह तो दिया लेकिन थोड़ी देर बाद बड़ी उलझाव में पड़ गई। क्या मुझमें संन्यास लेने की पात्रता है? उलझन अधिक देर न टिकी ख्याल आया जब उन्होंने स्वीकृति दे दी तो मैं क्यों इसमें उलझूं। रात गहरी नींद में सोई सुबह उठी तो प्रति-दिन से ज्यादा हल्कापन महसूस हुआ। एक संकल्प मन में दृढ़ हो गया था।

सुबह जब भगवे कपड़े पहने उसी समय भीतर से ऐसी आवाज आई अरे अब तो तू सदा के लिए सुहागन हो गई अब तू जिसके चरणों में समर्पित होने के लिये जा रही है, वह तो कभी मरता नहीं सदा से है सदा रहेगा। अब तू फिर अपने माथे पर बिंदी लगा। मैं हर्ष से नाच उठी और माथे पर बिंदी लग गई।

मैं कपड़े पहन माथे पर बिंदी लगा कर आचार्य श्री के चरणों में जाकर बैठी तो मेरा हृदय आनन्द से नाच रहा था। उन्होंने आशीर्वाद दिया देखकर मुस्कुराये··· उनकी उस मुस्कुराहट और आंखों से झरते हुए प्रेम की वर्षा में पूरी तरह भीग गई। क्या हो गया अचानक मुझे, खुद भी ज्ञात नहीं, बस लगा अब छोड़ दिया तेरे चरणों में **अब जो तेरी मर्जी।** ऐसा भाव आते ही एक दम जैसे **जन्मों से लदे बोझ से एकदम निर्भार हो गई।** प्रभु की अनुकम्पा से भर गई। एक क्षण लगा मुझमें तो कोई पात्रता नहीं थी संन्यास लेने की उसे इतनी सहजता से दे दिया।

कोई नियम नहीं, कोई शर्त नहीं–बिल्कुल बेशर्त।

थोड़ी देर उनके पास मौन बैठी रही उस मौन में बस इतना ही लगा जैसे वे कह रहे हैं बस अब ध्यान कर उसमें ही अपनी पूरी शक्ति लगा। वही है मार्ग-मिलन का।

उनके चरणों से उठने का जी नहीं हो रहा था फिर भी उठना तो था ही उठकर बाहर आकर बैठ गई।

१५-२० मिनट बीते होंगे कि किसी ने मेरे हाथ में आचार्य श्री का लिखा हुआ पत्र लाकर दिया। जिसमें एक कहानी थी। वह कहानी कहने भर को कहानी थी, वास्तव में एक गहरी चोट थी।

उस कहानी के माध्यम से उन्होंने कहा कि किसी को यदि एक खाली पिंजडा भी भेंट में दे दिया जाय तो वह बहुत दिनों खाली नहीं रह सकता। एक दिन उसमें पक्षी आ ही जाता है।

मैंने उसे दो-तीन बार पढ़ा आंख से आंसू गिरने लगे, हृदय छटपटाने लगा। उस पीड़ा को कैसे व्यक्त करूं ?

सच ही एक खाली पिंजड़ा दिखाई देने लगा बिना पक्षी का। अब जब तक पक्षी न आ जाये तब तक बेचैनी मिटे कैसे ? इसके पहले कभी ध्यान की इतनी तीव्र प्यास जागृत नहीं हुई थी। जीती थी सोई सोई। लेकिन इस खाली पिंजड़े ने इतने जोर का धक्का दिया कि फिर बिना ध्यान के जीना असंभव हो गया।

इस बार जब बम्बई में ध्यान शिविर हुआ उसमें अपने को पूरी तरह उसके ऊपर छोड़कर ध्यान किया। पहली बार अपने को पूरा छोड़ पाई उसका परिणाम भी चित्त पर हुआ। मन की जाने कब से उलझी हुई गांठें एकदम सुलझ गईं। अनुभव हुआ हमारी अपनी पकड़ ही बाधा थी। उसके हाथ में छोड़ते ही सब गिर गया। अभी नियमित ध्यान का प्रयोग करती हूं। प्रति-दिन चित्त आनंद से भरता जाता है। चिन्ता और उदासी कहां गायब हो गई कुछ समझ में नहीं आता।

इसके पहले मेरे चित्त की जो दशा थी उससे मैं स्वयं ही परेशान थी। जो पकड़ जाता उसी में उलझ जाती, उससे बाहर कैसे निकलूं कोई उपाय न सूझता। बुद्धि से समझती थी तब तक तो उसमें फंस ही जाती। बुद्धि समय पर काम नहीं देती। बुद्धि से काम लेने पर तो मन अपने जाल में फंसा ही लेता है।

ध्यान की गहराई बढ़ने पर समस्या अपने आप हल हो जाती है। कुछ करना नहीं पड़ता किसी भी भाव दशा के पकड़ने के पूर्व उस पर छोड़ देने मात्र से ही हल हो जाता है।

आचार्य श्री जो कह रहे हैं उसे मात्र कह ही नहीं रहे हैं, वैसा ही जीते भी हैं।

अंत में और कुछ नहीं बस इतना ही कहूंगी एक बार फिर अवसर मिला है, मौका आया है। इसे चूक न जायें। ऐसे महापुरुष हजारों वर्षों में हमारे बीच आते हैं·····और तो क्या कहूं पीछे सिर्फ पछतावा ही हाथ रह जाता है।

जीवन जागृति आंदोलन, अन्तर्राष्ट्रीय शीर्ष केंद्र, बम्बई की तीन विशेष सूचनाएं

—प्रस्तोता : स्वामी योग चिन्मय

१. 'अभिनव संन्यास आन्दोलन के संन्यासियों की देश-यात्रा

भारत के नर-नारियों को जगाने के लिए, उन्हें धर्म की ओर—सत्य की ओर उत्प्रेरित करने के लिए एवं **धर्म के पुनरुत्थान और धर्म-चक्र-प्रवर्तन हेतु आचार्य श्री रजनीश लगातार पिछले दस वर्षों तक देश के कौने-कौने में घूमते रहे।**

आध्यात्मिक चेतना के विस्फोट की संभावना को उन्होंने लाखों-करोड़ों लोगों की आंखों में झांककर खोजा है। सारे देश में उन्होंने सत्य के प्यासों के लिए उद्घोषणा कर दी है, चुनौती दे दी है कि उनकी स्वयं की तैयारी पूरी है और जो चरम आध्यात्मिक जागरण की ओर चलना चाहें उनके लिए वे श्रम करने को तैयार हैं। **इस बीच लाखों साधकों से उनका अंतरतम एवं दृष्य तथा अदृश्य सम्बन्ध हुआ है।**

अब आचार्य श्री ऐसा संकेत करते हैं कि **उनका परिव्राजक एवं प्रवासी जीवन समाप्त** हो चुका है। अतः अब वे एक स्थान पर स्थायी रूप से रहकर **चुने हुए साधकों पर गहन एवं गुह्य आध्यात्मिक प्रयोगों में** लग रहे हैं। ऐसा भी लगता है कि किसी भी दिन वे अचानक बोलना भी बंदकर पूर्ण मौन हो जावें ताकि वे धार्मिक चेतना के विस्फोट हेतु सूक्ष्म एवं अदृष्य रूपसे कार्य कर सकें।

इसके लिए उनके निर्देश एवं साक्षीत्व में एक **अभिनव संन्यास आंदोलन का जन्म** पांच माह पहले हुआ है जिसमें **अबतक देश के १३७ संन्यासी एवं संन्यासिनी दीक्षित** हो चुके हैं।

वे संन्यासी विशिष्ट साधना पद्धतियों में रत हैं तथा वे आचार्य श्री रजनीश की नयी जीवन-दृष्टि, जीवन-शिक्षा एवं प्रायोगिक-धर्म के बहु-आयामों में निपुण एवं समर्थ होकर भारत एवं विश्व के कौने-कौने में धर्म व संस्कृति के पुनरुत्थान तथा धर्म-चक्र प्रवर्तन हेतु बाहर निकल रहे हैं।

वे संन्यासी देश के सभी भागों में जाकर लोगों को सम्यक शिक्षा, धर्म-साधना एवं जीवन-सृजन की ओर उत्प्रेरित करेंगे। इन संन्यासियों के पास विशिष्ट साहित्य होगा, योग-साधना के चलचित्र होंगे तथा वे गांव-गांव घूमकर **ध्यान-साधना, धर्म, शिक्षा एवं संस्कृति का आन्दोलन** चलायेंगे।

अतः देश के सभी जीवन जागृति केन्द्रों को तथा आचार्य श्री के प्रेमियों एवं साधकों को सूचित किया जाता है कि **अब** आचार्य श्री के विचारों एवं जीवन-दृष्टि को समझने के लिए अथवा ध्यान-प्रयोगों के लिए

आचार्य श्री द्वारा चुने हुए संन्यासी ही बाहर भेजे जावेंगे। वे वहां ध्यान के प्रयोग करवायेंगे, साधना सम्बन्धी चर्चाएं करेंगे एवं आचार्य श्री के विशिष्ट टेप सुनवायेंगे।

विदेशों से भी आचार्य श्री को प्रवचन एवं ध्यान-प्रयोगों के लिए निमंत्रण मिल रहे हैं जिनमें आचार्य श्री स्वयं न जाकर संन्यासियों को ही भेज रहे हैं।

इसलिए देश के सभी मित्रों, प्रेमियों एवं साधकों से निवेदन है कि इस स्थिति को ध्यान में रखें। और जो भी मित्र अपने शहरों में ध्यान के प्रयोग आयोजित करना चाहें वे निम्नांकित पते पर पत्र-व्यवहार करें।

माँ योग लक्ष्मी, आचार्य श्री रजनीश की सचिव, जीवन जागृति आन्दोलन, ए-वन, वुडलेंड, पेडर रोड, बम्बई-२६ फोन ३८२१८४।

★

२. अभिनव संन्यासियों की विदेश-यात्रा

९ अगस्त से १९ अगस्त १९७१ तक लॉस एन्जिल्स, केलिफोर्निया अमेरिका में एक विराट World Congress for Enlightenment (धर्म जागरण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय आध्यात्मिक सम्मेलन) के महात्सव का आयोजन हुआ है। इस अपने ढंग के अनूठे एवं ऐतिहासिक विश्व धर्म अधिवेशन में विश्व के कोने-कोने से समस्त धर्म व योग के ३०० कुशल एवं अधिकारी, महात्मा, गुरु एवं शिक्षक सम्मिलित हो रहे हैं। इस अधिवेशन में अमेरिका व अन्य देशों से लगभग **२० लाख श्रोता एवं साधक उपस्थित होंगे।**

इस सम्मेलन में विश्व में उपलब्ध सैकड़ों योग व साधना की पद्धतियों पर प्रवचन एवं प्रयोग होंगे।

आचार्य श्री रजनीश इस महोत्सव में विशेष रूप से आमंत्रित हुए हैं। लेकिन अब अधिक प्रवास न करने के कारण वे स्वयं वहां नहीं जा रहे हैं। अतः उनके द्वारा प्रेरित अभिनव संन्यास आन्दोलन के दो प्रमुख सन्यासियों को वे अपने प्रतिनिधि के रूप में अमेरिका भेज रहे हैं।

योग-आचार्य स्वामी योग चिन्मय और स्वामी आनंद वीतराग एम० ए०, पी एच० डी० (एडिनबरा), डी० लिट० (पटना) इस महात्सव में आचार्य श्री का प्रतिनिधित्व करेंगे।

★

३. अभिनव संन्यास आन्दोलन के संन्यासी

जीवन जागृति आन्दोलन के अन्तर्गत आचार्य श्री रजनीश की प्रेरणा एवं साक्षीत्व में प्रारंभ हुए **अभिनव संन्यास आन्दोलन** में अब तक देश और विदेश के निम्नलिखित १३७ संन्यासी दीक्षित हो चुके हैं।

क्रम	संन्यास के नये सम्बोधन	पुराने नाम	निवास — शहर स्थान
१.	माँ योग लक्ष्मी	कुमारी लक्ष्मी कुरुवा,	बम्बई
२.	माँ योग भगवती	कुमारी भगवती अडवानी,	बम्बई (गोरेगांव)
३.	माँ योग प्रेम	कुमारी जसु कोठारी, राजकोट,	अब संस्कार तीर्थ आजोल में
४.	माँ योग समाधि	कुमारी मीना मोदी,	राजकोट
५.	माँ योग प्रिया	कुमारी पुष्पा, घोड़नदी, पूना,	अब आजोल (गुजरात)
६.	माँ योग यशा	कुमारी मंगला दुग्गड़, पूना	अब आजोल (गुजरात)
७.	माँ योग क्रांति	सुश्री क्रान्ति, जबलपुर	अब बम्बई
८.	माँ योग शांति	सुश्री चन्द्रा,	बम्बई
९.	माँ योग मैत्री	सुश्री यूको फ्यूजीता	टोकियो (जपान)
१०.	माँ योग करुणा	सुश्री हीरा बहन पटेल,	आजोल
११.	माँ योग मंगल	सुश्री मंगला,	अहमदाबाद
१२.	माँ योग माया	सुश्री साध्वी श्रद्धाजी,	आजोल
१३.	माँ योग राधा	सुश्री हीरा बहन ठक्कर,	आजोल
१४.	माँ योग वीणा	कुमारी शोभा,	आजोल
१५.	माँ योग मीरा	सुश्री जयवंती शुक्ला,	जूनागढ़ (गुज०)
१६.	माँ योग सिद्धि	सुश्री चंद्रिका,	अहमदाबाद
१७.	माँ योग तरु	सुश्री तरला मेहता,	बम्बई
१८.	माँ योग श्रद्धा	सुश्री हेमा पारिख,	कल्याण, बम्बई
१९.	माँ योग प्रार्थना	कुमारी कमल चावला,	बम्बई
२०.	माँ योग तारा	कुमारी तारा कारिया,	बम्बई
२१.	माँ योग शिवा	सुश्री शिवा खेराज,	मुलुण्ड, बम्बई
२२.	माँ योग इंदिरा	सुश्री इंदिरा सहगल,	माहिम, बम्बई,
२३.	माँ योग सुनीता	सुश्री अनीता अरोरा,	गोरेगांव, बम्बई
२४.	मां योग विमल	सुश्री विमल सूद,	पूना
२५.	माँ योग सुधा	सुश्री सुधा श्रीवास्तव,	जबलपुर
२६.	माँ योग सम्बोधि	सुश्री शान्ता सिंह,	जबलपुर
२७.	माँ योग संध्या	सुश्री संध्या राजोरे,	पूना
२८.	माँ योग उपासना	सुश्री अंजानीबाई कापरे,	पूना
२९.	माँ योग हीरा	सुश्री हीराबाई गनबोते,	पूना
३०.	माँ योग अमृता	कुमारी लाजवन्ती तुलसानी,	पूना
३१.	माँ योग उमा	सुश्री उमा चौधरी,	पूना
३२.	माँ योग शक्ति	सुश्री मंगू यादव, ग्राम : गावडा,	बीजापुर (गुज०)
३३.	माँ योग चेतना	कुमारी लूइस लेवी,	केलीफोर्निया, (अमेरिका)
३४.	माँ योग साधना	सुश्री विनीता,	पूना
३५.	स्वामी योग चिन्मय	स्वामी क्रियानंद सरस्वती,	बिलासपुर अब बम्बई

३६. स्वामी योग सिद्धार्थ	श्री महेश ठक्कर,	अहमदाबाद
३७. स्वामी योग विवेक	श्री राजू पारिख,	कल्याण, बम्बई
३८. स्वामी योग वासुदेव	श्री वासुदेव आहूजा,	बोरिवली, बम्बई
३९. स्वामी योग दिगम्बर	श्री दिगम्बर दाजीबा कदम,	पूना
४०. स्वामी योग दत्तात्रेय	श्री डी. डी. देशपान्डे,	पूना
४१. माँ आनंद मधु	सुश्री धर्मिष्ठा शाह,	संस्कारतीर्थ, आजोल
४२. माँ आनंद प्रेम	स्वामी योग प्रेमानंद,	शिवानंद आश्रम, न्यूयार्क, अमरीका
४३. माँ आनंद सिंधु	सुश्री सिन्धु देशपान्डे,	पूना
४४. स्वामी आनन्द कृष्ण	श्री रणजीत बी. पारिख,	कल्याण, बम्बई
४५. स्वामी आनन्द प्रज्ञान	स्वामी प्रज्ञानानंद,	बम्बई
४६. स्वामी आनन्द अमृत	श्री अमृतलाल जे० मारू,	अहमदाबाद
४७. स्वामी आनन्द शिव	श्री शिवनाथ,	मनाली
४८. स्वामी आनन्द वर्धन	श्री चन्द्रकांत एम० शाह,	बम्बई
४९. स्वामी आनन्द गोपाल	श्री गोपाल वासुदेव लखपति,	बम्बई
५०. स्वामी आनन्द अर्हत	श्री विनोदकुमार शर्मा,	बम्बई
५१. स्वामी आनन्द धन	श्री धनजी गोपालजी पोपट, मुलुण्ड,	बम्बई
५२. स्वामी आनन्द अशोक	श्री अशोक एम० परदेशी,	पूना
५३. स्वामी आनन्द योग	श्री द्वारिकाधीश चंद्रभान अग्रवाल,	पूना
५४. स्वामी आनन्द गिरि	श्री शशिकांत राजाराम कापरे,	पूना
५५. स्वामी आनन्द स्वरूप	श्री वसन्त मोरे,	पूना
५६. स्वामी आनन्द मधुकर	श्री मधुकर,	पूना
५७. स्वामी आनन्द ब्रह्म	श्री मे० डी० जेठमलानी	पूना
५८. स्वामी आनन्द	श्री मा साहेब पांडुरंग पाटिल,	पूना
५९. स्वामी आनन्द नारायण	श्री नारायण काशीनाथ देशमुख,	पूना
६०. माँ कृष्ण करुणा	कुमारी जवेर शाह,	बम्बई
६१. माँ कृष्ण शोभना	सुश्री शोभना कलीना,	बम्बई
६२. माँ कृष्ण मीरा	सुश्री अजीज उन्निसा,	पूना
६३. स्वामी कृष्ण चैतन्य	श्री बाबूभाई शाह,	संस्कारतीर्थ. आजोल
६४. स्वामी कृष्ण कबीर	श्री चंद्रकांत ब्रह्मचारी	अहमदाबाद
६५. स्वामी कृष्ण क्राइस्ट	श्री वाल्टर फ्यूजे,	न्यूयार्क, (अमेरीका)
६६. स्वामी कृष्ण हरि	श्री कृष्ण हरि गार्गी,	पूना
६७. स्वामी कृष्ण मोहन	श्री मोहन कुमार कामले,	पूना
६८. स्वामी कृष्ण यशोधर	श्री यशोधर महादेव सावन्त,	पूना
६९. स्वामी प्रेम कृष्ण	एक पद यात्री,	आजोल
७०. स्वामी प्रेम चैतन्य	श्री दौलत हुस्सानंद नागदेव,	पूना
७१. स्वामी प्रेम वेदान्त	श्री प्रेम पुंगलिया,	पूना;

७२. माँ प्रेम कृष्णा	कुमारी नीलवती राजाराम कापरे,	पूना
७३. माँ प्रेम ज्योति	सुश्री प्रेमलता द्वारिकाधीश अग्रवाल,	पूना
७४. माँ धर्म मुदिता	सुश्री सुमन के० शाह,	कल्याण, बम्बई
७५. माँ धर्म ज्योति	कुमारी पुष्पा पंजाबी,	बम्बई
७६. माँ धर्म कीर्ति	सुश्री अनसुया बहन,	संस्कारतीर्थ, आजोल
७७. माँ धर्म प्रतिमा	सुश्री रतन बहन,	बम्बई
७८. माँ धर्म समाधि	सुश्री उर्मिला के० पान्चाल,	पवई, बम्बई
७९. माँ धर्म सम्बोधि	सुश्री नलिनी बहन पारिख,	कल्याण, बम्बई
८०. माँ धर्म रक्षिता	सुश्री जसुमति पण्डया,	बम्बई
८१. माँ धर्म यशा	कुमारी भीमाबाई राजाराम कापरे,	पूना
८२. माँ धर्म सरस्वती	कुमारी सरस्वती वेलाला,	पूना
८३. माँ धर्म श्रद्धा	सुश्री शकुन्तला मेढा,	बम्बई
८४. माँ धर्म भारती	सुश्री पदमा बहन,	मलाड, बम्बई
८५. माँ अगेह भारती	सुश्री पुष्पा उपाध्याय भावनगर,	अब बम्बई
८६. माँ अर्चना भारती	सुश्री वासुदेवी मखीजा,	पूना
८७. माँ गीता भारती	कुमारी के० सुनन्दा,	पूना
८८. स्वामी चैतन्य भारती	श्री हरीश	दिल्ली
८९. स्वामी वेदान्त भारती	श्री वीरेन्द्रकुमार अरुण, पटना,	अब आजोल
९०. स्वामी अनन्त भारती	श्री भीकमचंद जैन,	जबलपुर
९१. स्वामी अद्वैत भारती	श्री कीर्तिकांत भट्ट,	अहमदाबाद
९२. स्वामी आनंद भारती	श्री हिम्मतभाई जोशी, विले पारले,	बम्बई
९३. स्वामी अक्षय भारती	श्री अशोक उपाध्याय, भावनगर,	अब बम्बई
९४. स्वामी अकाम भारती	श्री गुलाबभाई पण्ड्या,	मलाड, बम्बई
९५. स्वामी निकलंक भारती	श्री निकलंक	गाडरवारा
९६. स्वामी ब्रह्म भारती	श्री पंडित देवकीनन्दन, ग्राम-गुडा	एंदला, जि० पाली राज०
९७. स्वामी योग भारती	श्री अश्विनीकुमार सेनी, मैहर,	सतना म० प्र०
९८. स्वामी दिनेश भारती	श्री दिनेश बलराज मैतलू,	पूना
९९. स्वामी अमृत भारती	श्री मनोहर सी० मेढा,	बम्बई
१००. स्वामी अगेह भारती	श्री शिवप्रताप सिंह, 'शिव'	जबलपुर
१०१. स्वामी नीलकण्ठ भारती	श्री नीलकण्ठ सीताराम वैकर,	पूना
१०२. स्वामी गोविन्द भारती	श्री एम० एच० वर्मा,	अहमदनगर
१०३. स्वामी आनन्द मूर्ति	श्री कृष्ण बी० रिंगवाला,	अहमदाबाद
१०४. स्वामी प्रेम मूर्ति	श्री कनुभाई शाह,	कल्याण, बम्बई
१०५. स्वामी योग मूर्ति	श्री घनेन्द्रकुमार लोहिया, गोरेगांव,	बम्बई
१०६. स्वामी विजय मूर्ति	श्री विजय सी० श्यामानी,	पूना
१०७. स्वामी कृष्ण सरस्वती	श्री रमणभाई पटेल,	अहमदाबाद

१०८. स्वामी अक्षय सरस्वती	श्री नारायणप्रसाद श्रीवास्तव,	जबलपुर
१०९. स्वामी श्रीकांत सरस्वती	श्री श्रीकान्त बाबूराव दुर्गे,	पूना
११० स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती	श्री खामन्ते शिवाजी लक्ष्मण राव	पूना
१११ स्वामी रामानन्द सरस्वती	श्री रमेश बी. पतन्गे,	पूना
११२. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती	श्री रमेश लागड, घाटकोपर,	बम्बई
११३. स्वामी स्वरूपानंद सरस्वती	श्री हनुमंत वेंकटेज देसाई,	पूना
११४. स्वामी निर्गुण सरस्वती	श्री ठाकुर वेरुमल तलरेजा, अंधेरी	बम्बई
११५. स्वामी रामतीर्थ	श्री रामगोपाल आर. अग्रवाल, पूना,	अब आजोल
११६. स्वामी ब्रह्म तीर्थ	श्री छगनलाल तुलसीदास यादव, ग्राम	गवडा जिला० बीजापुर गुज०
११७. माँ योग निवेदिता	कुमारी रमा कामदार,	राजकोट
११८. माँ ब्रह्म निवेदिता	सुश्री कुन्ती बहन,	पूना
११९. माँ प्रेम निवेदिता	सुश्री जयवन्ती माहेश्वरी, घाटकोपर,	बम्बई
१२०. स्वामी आनन्द विजय	श्री नेमिकुमार	जबलपुर
१२१. स्वामी धर्म विजय	श्री शशिकाँत राजाराम कापरे	पूना,
१२२. स्वामी शांति विजय	श्री लिगेमा यामू	पूना
१२३. स्वामी अमृत विजय	श्री सम्पतलाल छुतार	पूना
१२४. स्वामी राम योगी	श्री रामसुन्दर महावीर परदेशी	पूना
१२५. स्वामी आनन्द योगी	श्री कुमार के० भालचंद	पूना
१२६. स्वामी महेन्द्र योगी	श्री महेन्द्र जेठालाल मेहता	पूना
१२७. स्वामी गीत गोविन्द	श्री रमेश पटेल	अहमदाबाद
१२८. स्वामी भक्ति वेदान्त	श्री जगदीश शंकरलाल	अहमदाबाद
१२९. स्वामी राजहंस	श्री राजहंस	बम्बई
१३०. स्वामी सत्य भक्त	श्री किशोर कनुभाई शाह, कल्याण	बम्बई
१३१. स्वामी रोहित सिद्धार्थ	श्री रोहित आर० खेराज, मुलुण्ड,	बम्बई
१३२. स्वामी राजाराम	श्री राजाराम कुसाबा कापरे,	पूना
१३३. स्वामी चैतन्य प्रभु	श्री भालचंद वनरावनदास तुरखिया,	पूना
१३४. स्वामी अमृत चैतन्य	श्री शांतिभाई के० भट्ट,	गोरेगांव बम्बई
१३५. माँ चिन्मय राधा	सुश्री पुष्पा वासुदेव तेजनानी,	बम्बई
१३६. माँ प्रेम समाधि	श्रीमती नेमिकुमार,	जबलपुर
१३७. माँ गीता सरस्वती	श्रीमती मनोरमा श्रीवास्तव	जबलपुर

जीवन उपलब्धि की दिशा

(राजकोट लायन्स क्लब में आचार्य श्री द्वारा "वर्तमान युग में विचारकों का सम्मान" प्रसंग पर दिया गया एक प्रवचन)

संकलन : **सुश्री वासंती वखारिया (खेडा, गुज०)**

मेरे प्रिय आत्मन्,

ऐसा लगता है कि कहीं कुछ भूल हो गई। मैं कोई विचारक नहीं हूं, और ऐसा भी नहीं मानता हूं कि विचारकों से जगत का कोई लाभ हुआ। मनुष्य के जीवन में जितने झगड़े और उपद्रव हुये, विचारक उसका कारण है। (हास्य) और मनुष्य के जीवन में जीवन को जीने की जो क्षमता कम हुई है, उसका कारण ही विचारक है। न मालूम इतिहास के किस दुर्भाग्य क्षण में आदमी को यह ख्याल आ गया कि विचार के द्वारा जीवन जिया जा सकता है। जीवन में जो भी श्रेष्ठ है वह विचार से उपलब्ध नहीं होता। न सौंदर्य, न सत्य, न प्रेम। विचार एक धोखा है।

मैंने सुना है, रवीन्द्रनाथ एक रात एक बजरे में यात्रा कर रहे थे। पूर्णिमा की रात्रि थी, और पूरा चांद आकाश में था। अब वह नाव के छोटे से झोपड़े में एक छोटी मोमबत्ती को जला के एक किताब पढ़ रहे थे। वह किताब Asthetics पर थी—सौंदर्य शास्त्र पर थी। आधी रात तक वे किताब पढ़ते रहे, सौंदर्य क्या है? और फिर ऊब गये। और किताब को बन्द कर दिया। और मोमबत्ती को फूक मार के बुझा दिया। और तभी अचानक जैसे एक क्रांति घट गई। द्वार से, खिड़कियों से, बजरे के रंध्र-रंध्र से चांद की किरणें भीतर आ गईं। मोमबत्ती के धीमे से प्रकाश ने चांद को बाहर रोका था। रवीन्द्रनाथ नाचने लगे। और उन्होंने दूसरे दिन सुबह कहा, कैसा अभागा हूं मैं? सौंदर्य बाहर मौजूद था। सौंदर्य पूरे क्षण बाहर प्रतीक्षा करता था, और मैं सौंदर्य पर एक किताब पढ़ता रहा। जब मैंने मोमबत्ती बुझा दी, और किताब बन्द कर दी कि सौंदर्य मेरे कमरे के भीतर आके नाचने लगा। वे बाहर आ गये। उन्होंने चांद को देखा, रात को देखा, उस रात के सन्नाटे को देखा, सौंदर्य वहां मौजूद था। लेकिन विचार मौजूद था, किताब में सिर्फ विचार ही हो सकते हैं, सौंदर्य नहीं हो सकता। विचारक के पास भी सिर्फ विचार ही होते हैं, सत्य नहीं होता, न सौंदर्य होता, न प्रेम होता। और विचार सिवाय् शब्दों के जोड़ के और कुछ भी नहीं है, सब विचार बासे हैं, सब विचार उधार हैं, कोई विचार मौलिक नहीं होता। कोई विचार मौलिक हो भी नहीं सकता। मौलिक होती है अनुभूति और अनुभूति होती है निर्विचार। लेकिन वही पुरानी भूल हुई, और इसी भूल ने मुझे भी बुला लिया यह भूल है। हम महावीर को भी विचारक कहते हैं। महावीर विचारक नहीं हैं। महावीर जो कुछ भी हैं, वह विचार को छोड़ के हैं। हम बुद्ध को भी विचारक कहते हैं। बुद्ध भी विचारक नहीं हैं। बुद्ध जो कुछ भी हैं विचार के पार जाकर हैं। जिनको हम विचारक कहते हैं उनमें से बहुत लोग विचारक नहीं हैं। जिन्होंने इस जगत को कुछ दिया है उन्होंने विचार से नहीं दिया, विचार से पार जाकर दिया। विचार वाहन हो सकता है, अभिव्यक्ति का, उपलब्धि का मार्ग नहीं है। लेकिन कुछ लोग सिर्फ विचारक हैं। उनके पास सिवाय शब्दों के संग्रह के कुछ भी नहीं है। और यह शब्दों के संग्रह को उन्होंने जीवन समझा हुआ है। इसलिये विचारक मरने से बहुत पहले मर जाता है। और उसके पास शब्दों की लाशों के सिवाय कोई जीवन नहीं होता।

मैंने सुना है एक फकीर था। और फकीर अद्भुत आदमी था। उसने विचार के ऊपर बड़ा व्यंग किया है,

लेकिन विचारक इतने कम समझदार होते हैं कि विचार के ऊपर किये गये व्यंग भी उनकी पकड़ में नहीं आते। यह फकीर एक दिन घर लौटता था। और किसी मित्र ने उसे कुछ मांस भेंट कर दिया, और साथ में एक किताब दे दी। किताब में मांस के बनाने की विधि लिखी हुई थी। वह बगल में किताब को दबाकर और हाथ में मांस को लेकर घर की तरफ भागा। एक चील ने झपट्टा मारा, वह उसके मांस को उठाकर ले गई। वह फकीर ने चील को कहा कि मूर्ख है तू, विधि बनाने की तो मेरे पास है। मांस का क्या करेगी? वह घर पहुंचा। उसने अपनी पत्नी को कहा देखती हो एक मूर्ख चील मेरे मांस को छीन के ले गई है, और किताब मेरे पास है, जिसमें विधि लिखी है बनाने की, चील मांस का करेगी क्या? उसकी पत्नी ने कहा की तुम विचारक मालूम होते हो। (हास्य) चील का किताब से मतलब नहीं है। चील को मांस बनाने की विधि से मतलब नहीं है। तुम किताब बचाये और मांस छोड़ आये। अच्छा होता की किताब चील को दे आते और मांस घर ले आते। लेकिन विचार हजारों साल से किताब बचाकर चला आ रहा है और जिन्दगी को छोड़ता चला जा रहा है। इसीलिए दुनिया में जितना विचार बढ़ गया है उतन जीवन कम और क्षीण हो गया है। दुनिया में जितना विचार रोज बढ़ता जा रहा है, आदमी उतना उदास और हैरान होता चला जा रहा है क्योंकि जिन्दगी का सारा अर्थ खोता चला जा रहा है।

जिन्दगी का जो रस है, जिन्दगी का जो भी अर्थ है वह जीने से उपलब्ध होता है, विचार करने से नहीं और यह सब झूठ बन जाता है कि हम जीने को छोड़ देते हैं, और विचार करने को पकड़ लेते हैं। मैं एक फूल के पास जाऊँ और बैठ के फूल के संबंध में सोचने लगूं तो मैं एक विचारक हूं। लेकिन फूल के संबंध में जो बैठकर सोच रहा है, वह फूल को जानने से वंचित रह जायेगा। विचार की दीवार खड़ी हो जायेगी। फूल उस पार हो जाये और मैं इस पार हो जाऊँ। सब विचारकों के आसपास विचारों की दीवार बन जाती है। बात की, शास्त्र की और ये अपनी ही दिवार में बन्द हो जाते हैं। बाहर की दुनिया से उनका जीने का सारा संबंध टूट जाता है। वह जो फूल है वह द्वार खटखटाता रहेगा कि आओ। लेकिन विचारक विचार करता रहेगा। अ र फूल को जानना हो तो फूल के पास बैठकर सोचने की जरूरत नहीं है, फूल के पास बैठकर सोचना छोड़ देने की जरूरत है। ताकि फूल भीतर प्रवेश कर जाये। मेरी आत्मा और फूल की आत्मा किसी जगह मिल सके। विचार कभी भी मिलने नहीं देता है। और इसीलिए दुनिया में जितना विचार होता है उतना आदमी आदमी अलग होते चले जाते हैं। दुनिया में जितने झगड़े हुये हैं वह सब विचार के झगड़े हैं। क्योंकि सब विचारों की दीवार है।

एक आदमी कहता है मैं मुसलमान हूं। एक आदमी कहता है मैं हिन्दू हूं। एक हिन्दू और एक मुसलमान के बीच फर्क क्या है? खून का फर्क है? हड्डी का फर्क है? आत्मा का फर्क है? एक हिन्दू और एक मुसलमान के बीच सिर्फ विचार का फर्क है मुसलमान ने भी विचार पकड़ लिया है। हिन्दू ने भी विचार पकड़ लिया है। और विचार की दीवार है। और तब विचार उतना महत्वपूर्ण हो सकता है कि हिन्दू मुसलमान की हत्या कर रहे हैं। और मुसलमान हिन्दू की हत्या कर दें। विचार उतना महत्वपूर्ण हो सकता है कि हम जीवन की हत्या कर दें और किताब को बचा लेंगे, विचार को बचा लेंगे, जीवन है एक मुक्तता, और किताब बढ़ती चली जाती हैं।

नये विचार, नये झगड़े ले आते हैं। दिन व दिन नये विचार। उसने नये झगड़े और नई दीवार खड़ी कर दी। क्या यह नहीं हो सकता कि आदमी अस्तित्व को जिये विचारे नहीं। यह हो सकता है। जीवन की गहराईयां अस्तित्व में उतरने से उपलब्ध होती हैं। और जिसे अस्तित्व में उतरना है उसे विचार को छोड़ के उतरना पड़ता है।

मैंने सुना है एक समुद्र के किनारे बहुत बड़ा मेला भरा हुआ था। और तट पर बहुत लोग इकट्ठे थे। वह

तटपर बैठके सोचने लगे कि समुद्र की गहराई कितनी है ? ये बड़े विचारक लोग थे। उन्होंने तट के ऊपर बैठ के विचार करना शुरू कर दिया कि समुद्र की गहराई कितना है ? लेकिन तट के ऊपर बैठकर कोई समुद्र की गहराई नहीं जान सकता। तट के ऊपर बैठ के समुद्र की गहराई जानने का कोई उपाय नहीं। समुद्र की गहराई में ही जाना पड़ेगा। लेकिन विचारकों की यह हालत सदा तट पर बैठ कर रह जाते हैं। यह तटपर बैठ के सोच विचार के हार के बिदा हो गये। समुद्र की गहराई का तो कोई पता न चला। वह मेले में कोई संप्रदायी, और कोई धर्मी भी गये। किसी ने कहा इतनी गहराई है। और किसी ने कहा हमारी किताब मे इतनी लिखी है। और वह अपनी किताबें ले आये और बड़ा विवाद शुरू हो गया। मैंने सुना है उस मेले में दो नमक के पुतले भी भूल से पहुंच गये। उन्होंने ने भी सारा विवाद सुना और उन्होंने कहा कि पागल हो गये हो ? अगर समुद्र की गहराई जाननी हो तो विचार करने की क्या जरूरत है ? समुद्र में कूद जाओ लेकिन उन लोगों ने कहा जब तक गहराई का पता न चले हम कूदें कैसे। गहराई का पता चले तब हम कूदें। गहराई का पता होगा तभी हम कूदेंगे। विचारक कहता है ईश्वर का मैं पक्का पता लगा लूं विचारकों से तब और खोज करने निकलूंगा। विचारक कहता है मैं प्रेम कर लूंगा जब मैं जान लूं और प्रेम की सारी फिलासफी समझ लूं। विचारक कहता है मैं जीवन में तब उतरूंगा जब मैं जान लूं कि जीवन क्या है ? और ध्यान रहे उस नमक के पुतले ने कहा कि फिर ठहरो, मैं कूद जाता हूं। मैं पता लगा आता हू। वह नमक का पुलता कूद गया। लेकिन नमक का पुतला समुद्र में कूदे, गहराई में तो जाने लगा, लेकिन जितना गहराई में जाने लगा, उतना ही पिघलने लगा। गहराई में पहुंच गया। ठीक समुद्र के नीचे पहुंच गया। उसने गहरायी जान ली। तब तक वह खो गया। तब तक वह लौटके बताने को नहीं रहा यह बड़ी अद्भुत बात है। यह जिंदगी का सबसे बड़ा Paradox वही है कि जो विचार करते रहते हैं वह बताने में असमर्थ हैं। और जो अस्तित्व की गहराई में उतरते हैं वह खो जाते हैं और बताने में असमर्थ हो जाते हैं। वह जो जानते हैं वह बता नहीं पाते और जो बिलकुल नहीं जानते हैं वह बताये चले जाते हैं। जो सत्य को बिलकुल नहीं जानते वह उस पर विचार करते रहते हैं। जो सत्य को जान लेते हैं वह खो जाते हैं।

मेरी अपनी समझ में विचार मनुष्य के जीवन में सबसे बड़ा अहंकार है। कुछ लोग धन इकट्ठा कर लेते हैं कुछ लोग विचार इकट्ठा कर लेते हैं। धन को इकट्ठा करने वाले को हम कहते हैं कि क्या संग्रह में लगे हुए हो। और विचार को इकट्ठा करने वाले को ? विचार को इकट्ठा करने वाले को हम उस तरह से नहीं कहते कि क्या विचार के संग्रह में लगे हो ? क्या होगा विचार के संग्रह कर लेने से ? धन के संग्रह से कुछ नहीं होता। विचार के संग्रह से भी कुछ नहीं होगा। लेकिन सब संग्रह अहंकार को मजबूत कर जाते हैं। धन हो मेरे पास, उसमें एक अकड़ आ जाती है कि मेरे पास धन है। और विचार हो मेरे पास तो मेरे पास एक अकड़ आ जाती है कि मेरे पास विचार है। और ज्ञान, पांडित्य और विचार की जो अकड़ है उससे बड़ी अकड़ और कोई भी नहीं हो सकती। वह जो अहंकार है उससे बड़ा अहंकार और कोई भी नहीं हो सकता। और ध्यान रहे जितना बड़ा अहंकार है, उतना ही गहरे में उतरने की क्षमता कम हो जाती है। लेकिन गहराई में उतरने से वह नमक का पुतला पिघला ऐसे अहंकार भी पिघल जाता है। जिसे गहरे जाना है, उसे विचार भी छोड़ना पड़ता है। विचार की पर्त हमारी चेतना पर ऐसी ही है।

अभी मैं एक गांव में ठहरा हुआ था। उस गांव की नदी को मैं देखने गया। वह सारी नदी काई से ढक गई थी। पत्ते ही पत्ते और काई ही काई सब नदी पर छा गई थी। एक पत्ते को मैंने हटाया और नदी झांकने लगी। जो मित्र मुझे ले गये थे, उन्होंने कहा, सारी नदी पत्ते से ढक गई है। मैंने कहा आदमी की भी सारी आत्मा विचार के पत्ते और कोई से ढक गई है।

थोड़े विचार को हटाओ तो भीतर से आत्मा की नदी झांकना शुरू हो जाती है। विचारक पत्ते से दबा हुआ आदमी है। और विचार सब उधार है। बाहर से लाये हुए हैं। ज्ञान भीतर से आता है और विचार बाहर से आते हैं। इसलिये विचारक को ज्ञानी समझ लेने की भूल में नहीं पड़ जाना चाहिये।

विचार सदा बाहर से आते हैं। शास्त्रों से, शिक्षकों से, और ज्ञान सदा भीतर से आता है। और जिसे ज्ञान लाना हो, उसे विचार बाहर से लाने की यात्रा बन्द करनी पड़ती है। एक छोटे से उदाहरण से समझाने की कोशिश करूं। मैंने सुना है एक आदमी ने घर में एक कुआं खोदा। और एक आदमी ने घर में एक हौज बनाया। अब हौज और कुआं बनाने का ढंग बिलकुल अलग होते हैं, हालांकि दोनों में पानी दिखाई पड़ता है। अब जब हौज बन गयी, कुआं बन गया, तो दोनों में पानी था। कुयें में भी पानी था। हौज में भी पानी था। लेकिन हौज में पानी उधार था। वह कहीं से मांगा गया था। वह कहीं से लाया गया था। कुयें के पास अपना पानी था। वह कहीं से मांगा नहीं गया, वह कहीं से लाया नहीं गया। हौज भर गयी, लेकिन हौज और कुयें के बनाने का ढग भी अलग है। कुयें को खोदना पड़ता है। कुयें की मिट्टी–पत्थर को निकाल कर बाहर फेक देना पड़ता है और अगर हौज बनानी है तो मिट्टी पत्थर खरीद के लाने पड़ते हैं। और एक बड़ी चमत्कार की बात। हौज बन जाये तो भी खाली है। कुआ बन जाये तो पानी से भर जाये। हौज के पास दूसरे का पानी होता है। जिसको हम विचारक कहते हैं, उसके पास दूसरे का पानी होगा। उसके पास महावीर का पानी होगा, बुद्ध का पानी होगा, क्राइस्ट का पानी होगा। लेकिन उसके पास अपना पानी नहीं होगा। और ध्यान रहे जब कुआं बनता है तो कुआं बनने का एक नियम है कि खाली होना पड़ता है, जितना कुआं खाली हो जाता है, उतना भर जाता है। जितना कुआं अपने भीतर की चीजों को बाहर फेंक देता है, उतने जल स्रोत उपलब्ध हो जाते हैं। विचारक इकट्ठा करता है, हौज की तरह, इकट्ठा करता जाता है। कभी हौज के पास जाके कान लगाकर सुनना, तो हौज हमेशा कहती है, और लाओ, और लाओ। कभी कुयें के पास कान लगाके सुनना कुआं कहता है निकाल लो और निकाल लो क्योंकि जितना निकल जाता है उतना नया भीतर से और आ जाता है। विचारक इकट्ठा करता है। और इसलिये विचारक बाहर से आयी हुई पर्त से खो जाता है और कभी अपने को नहीं जान पाता।

जिन्होंने अपने को जाना है, जिन्होंने सत्य को जाना है, उन्होंने निर्विचार होकर जाना है। महावीर विचारक नहीं बुद्ध विचारक नहीं, कृष्ण विचारक नहीं, और दुनिया में ऐसे लोगों की जरूरत है, जो विचार के पार होकर देख सकें। इसलिए हम उनको दृष्टा कहते हैं। इसलिए हम उस प्रक्रिया को जिससे ज्ञान उपलब्ध होता है, दर्शन कहते हैं, उसको विचारना नहीं कहते। लेकिन अभी बड़ी भूल हुई है। भूल यह हो गई कि पश्चिम से जो फिलासफी आई है उस फिलासफी को अपने मुल्क में दर्शन शास्त्र कहने लगे हैं। दर्शन और फिलासफी पर्यायवाची शब्द नहीं हैं। दर्शन का मतलब है सोच विचार और फिलासफी का अर्थ है देखना। देखना और सोच विचारने में दुश्मनी है। जो आदमी देख सकता है, सोचता विचारता नहीं। जो नहीं देख सकता वह सोचता विचारता है। मैं अगर अंधा हूं और मुझे उस कमरे के बाहर जाना हो तो मैं सोचूंगा कि रास्ता कहां है? पूछूंगा रास्ता कहाँ है? पूछूंगा द्वार कहां है? कैसे जाऊँ? कैसे निकलू। और अगर मेरे पास आँखें हैं तो मैं पूछूंगा नहीं। सोचूंगा नहीं और निकल जाऊँगा। आँख चाहिए, दर्शन चाहिए, विचार नहीं। दृष्टि चाहिए और दृष्टि सदा अपनी होती है। विचार सदा दूसरे के होते हैं। दूसरे की दृष्टि आपके पास नहीं होती। दूसरे की आँख से आप नहीं देख सकते। लेकिन दूसरे के विचार को आप संग्रह कर सकते हैं। इसलिए विचारक मेरी दृष्टि में सदा दरिद्र, सदा उधार आदमी होता है। उसके पास कुछ भी नहीं होता। विचारक से ज्यादा दरिद्र आदमी खोजना बहुत मुश्किल है।

लेकिन हमें लगता है कि विचारक के पास बहुत कुछ है। क्योंकि जो उसने इकट्ठा किया है, वह हमारी आँखों को चोंकाता है। जो उसके पास हमें दिखाई पड़ता है, जो हमने उससे सुना है जो वह लिखता है उससे लगता है कि उसके पास बहुत कुछ है। और हम भी विचार इकट्ठा करने में लग जाते हैं।

हमारी सारी शिक्षा विचार इकट्ठा करवाने की शिक्षा है। इसलिए हमारी शिक्षा ज्ञान को पैदा नहीं कर पाती। क्योंकि वह दृष्टि और दर्शन पैदा करने के लिए कोई प्रयोग नहीं करती। इधर मैं छोटी सी बात अंत में कहना चाहूंगा और वह यह कि मनुष्य को चेतना दो क्षमतायें हैं। एक विचारकी और एक निर्विचार की, एक सोचने की और एक देखने की। सोचने में जो उलझ जायेगा, वह देखने को भूल जायेगा। और जो देख लेगा उसकी सोचने की चेष्टा नहीं रह जाती। बुद्ध के पास एक बार एक आदमी को कुछ लोग ले आये। वह आदमी अन्धा है। उसके पास आँखें नहीं। उसके मित्रों ने बुद्ध को आकर कहा कि यह आदमी अन्धा है, हमारा मित्र है। हम उसे समझाते हैं कि प्रकाश है, हम समझाते हैं कि सूरज है, लेकिन यह मानने को तैयार नहीं होता। यह कहता है यह कैसे हो सकता है ? हम उसे कहते हैं तर्क देते हैं तो यह कहता है कि हम तुम्हारे प्रकाश को छूकर देखना चाहते हैं। जरा प्रकाश को ले आओ हम छू के देख लें। प्रकाश को हम ले आते हैं लेकिन यह छू नहीं पाता। यह कहता है कि तुम अपने प्रकाश को थोड़ा बजाओ तो हम सुन लें लेकिन हम प्रकाश को कैसे बजायें ? यह कहता है प्रकाश को मेरे मुंह में दे दो, मैं थोड़ा चख लूं, लेकिन हम प्रकाश का स्वाद कैसे करवायें ? हमने सोचा कि एक बड़ा विचारक गाँव में आया है। बुद्ध आये हैं तो हम जायें। बुद्ध ने कहा कि तुम गलत आदमी के पास आ गये। मैं कोई विचारक नहीं हूं। और इस आदमी को तुम परेशान मत करो। अच्छा है कि यह नहीं मानता क्योंकि जिसके पास आँख नहीं वह माने क्यों ? और अगर मान ले तो विचार में पड़ जायेगा। सब मान्यतायें विचार में ले जाती हैं, अगर एक अंधा आदमी मान ले कि प्रकाश है तो प्रकाश का आना उसके लिए सिर्फ एक विचार होगा। प्रकाश का आना उसके लिए सिर्फ एक विचार होगा। बुद्ध ने कहा कि तुम उसे विचारकों के पास न ले जाओ। अच्छा होगा कि किसी वैद्य के पास जाओ। विचारक क्या करेगा ? विचार देगा, वैद्य के पास ले जाओ उसकी आँख की चिकित्सा कर सके। वह उसे वैद्य के पास ले गये। उस आदमी की आँख पर जाली थी। कुछ दिन की दवा के प्रयोग से वह जाली कट गई। और वह आदमी ने प्रकाश देखा और वह नाचने लगा। और वह खोजकर बुद्ध के पास गया। उनके पैर पकड़ लिये। और उस आदमी ने कहा कि आपने बड़ी कृपा की, अन्यथा वह सब विचारक मुझे मिलकर मार डालते वह मुझे समझाते हैं लेकिन मुझे दिखाई नहीं पड़ता था। अब मुझे दिखाई पड़ रहा है। और मैं मानता हूं कि जो देखने से जाना जा सकता है, वह समझाने से नहीं जाना जा सकता, मैं कैसे समझता कि प्रकाश है ? और अगर समझ लेता तो भी उस का क्या मूल्य था ?

नहीं, विचार की इतनी जरूरत नहीं है जितनी दृश्य और दर्शन की जरूरत है। और दर्शन और दृश्य चाहते हो तो चित्त ऐसा होना चाहिए, जो विचारों को अलग करने में समर्थ हो जाये। थोड़ी देर को, थोड़े क्षणों को ही सही। अगर चौबीस घन्टे में क्षण भर को कोई व्यक्ति सारे विचारों से अपने को मुक्त कर ले और सिर्फ रहजाये, मात्र रह जाये, सोचे नहीं सिर्फ हो जाये, Thinking नहीं सिर्फ Being तो उसकी जिन्दगी में वह सब उतर आयेगा, जो श्रेष्ठ है, सुन्दर है, जो सत्य है।

एक अन्तिम कहानी, बात मैं अपनी पूरी करूँगा। मैंने सुना है एक पहाड़ के ऊपर एक आदमी खड़ा था। सुबह-सुबह सूरज निकला और अभी रोशनी ने चारों तरफ वृक्षों पर जागरण ला दिया है, और पक्षी गीत गाते हैं, और वह आदमी चुपचाप खड़ा है। कुछ लोग घूमने निकलते हैं। तीन मित्र रास्ते से गुजर रहे हैं। उन्होंने उस आदमी को वहां खड़े देखा, और एकमित्र ने कहा ये आदमी यहां क्या करता होगा ? अब सच तो यह

है कि कोई जरूरत नहीं कि वह आदमी वहां क्या करता होगा ? लेकिन विचार करने वाले लोग व्यर्थ का विचार करते हैं। वे तीनों विचारक रहे होंगे। एक ने कहा कि वह आदमी वहां क्या करता है ? दूसरे आदमी ने कहा कि जहां तक मैं समझता हूं, जहां तक मैं सोचता हूं, कभी-कभी उस फकीर की, जो ऊपर खडा है, गाय खो जाती है, वह अपनी गाय को खोजने के लिये पहाड़ पर खड़े होके देखता होगा, गाय कहां है ? लेकिन पहले आदमी ने कहा कि तुम्हारी बात ठीक नहीं मालूम पड़ती। विचारकों को कभी एक दूसरे की बात ठीक मालूम पड़ती ही नहीं । नहीं मालुम पड़ती इसलिये, कि अगर वह गाय को खोजता होता तो चारों तरफ आंख भटकती होती। चारों तरफ देखता, वह तो सिर्फ चुपचाप, एक ही तरफ देखता हुआ खड़ा है। खोजने वाला आदमी एक तरफ नहीं देखता, सब तरफ देखता है। लेकिन तीसरे आदमी ने कहा, तुम्हारी बात मुझे ठीक मालूम नहीं पड़ती। बातों की दुनिया में कभी कुछ ठीक मालुम पड़ता ही नहीं। उस तीसरे आदमी ने कहा कि मैं जहां तक समझता हूं कभी-कभी ऐसा होता है, अपना मित्र साथ लाता है, मित्र पीछे छूट जाता है तो वह खड़े होकर उसकी प्रतीक्षा करता होगा। उस पहले आदमी ने कहा, नहीं ठीक नहीं है। क्योंकि अगर कोई किसी की प्रतीक्षा करता हो तो कभी-कभी पीछे लौट के भी देखता है, वह पीछे लौट के देख ही नहीं रहा। तब उन दोनों ने पूछा कि तुम क्या कहते हो ? उस आदमी ने कहा जहां तक मैं सोचता हूं और मजा ये है कि ये तीनों सोच ही सकते हैं। क्योंकि वह आदमी क्या कर रहा है, यह वही जान सकता है। बाहर से तो सिर्फ सोचा ही जा सकता है। तो तीसरे ने कहा जहां तक मैं सोचता हूं वह भगवान का स्मरण कर रहा है। उनने कहा बड़ी मुश्किल हो गई। हम तीनों को पहाड़ पर चढ़ना पड़ेगा और इस आदमी को पूछना पड़ेगा कि वह कर क्या रहा है। अब बड़े मजे की बात है कि दूसरा आदमी कुछ भी कर रहा हो, तीन आदमियों को पहाड़ चढ़ने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन दूसरा क्या कर रहा है उसे जानने के लिये कोई भी पहाड़ चढ़ सकता है, हम खुद क्या कर रहे हैं, उसे जानने के लिए कभी भी कोई चिंता नहीं। तीनों पहाड़ चढ़े, थक गये, पसीना उनके माथे पर आ गया। उस आदमी के पास पहुंचे। पहले आदमी ने जाके कहाकि, जहां तक, महानुभाव, मैं सोचता हूं आपकी गाय खो गई है, आप खोज रहे हैं। उस आदमी ने आंख खोली। उसने कहा मेरा कुछ है ही नहीं इस जगत में, खोयेगा कैसे ? और जब खोया ही नहीं तो खोजूंगा कैसे ? मैं कुछ भी नहीं खोज रहा हूं। दूसरा आदमी हिम्मत से आगे आया। उसने कहा जहां तक मैं सोचता हूं आप खोज नहीं रहे हैं, लेकिन आपका मित्र पीछे छूट गया होगा। आप उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ? उस आदमी ने कहा न मेरा कोई मित्र है, न मेरा कोई शत्रु है, पीछे छूटेगा कौन ? प्रतीक्षा किसकी करूँगा ? मैं किसी की प्रतीक्षा नहीं कर रहा हूं। तब तो तीसरे आदमी ने कहा कि मेरी जीत निश्चित है। तो तीसरा आदमी आ गया, उसने कहा कि मैं सोचता हूं कि आप परमात्मा का स्मरण करते हैं। वह फकीर हंसने लगा । उसने कहा मुझे परमात्मा का कोई पता नहीं। मुझे अभी अपना ही पता नहीं है। मैं परमात्मा का स्मरण कैसे करूँगा ? तब तीनों ने पूछा कि फिर आप कर क्या रहे हैं ? उस आदमी ने कहा मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं। मैं सिर्फ .....हूं। इस आदमी ने कहा मैं कुछ कर नहीं रहा हूं। मैं सिर्फ हूं। और इस आदमी ने कहा, होना इतना आनंद है—मात्र होना और जिनने सत्य को जाना है, प्रेम को, परमात्मा को, मृत्यु को, मोक्ष को, उन सबने उस क्षण में जाना है, जब बाहर की सारी क्रिया खो गई है, और भीतर भी विचार की सारी क्रिया खो गई, क्रिया मात्र खो गई है, और सब सन्नाटा हो गया, सिर्फ होना मात्र रह गया—Just existing .....

तो मुझे गलती से बुला लिया, और इतना समय भी मैंने आपका लिया, उसके लिये माफी मांगने के सिवा और कोई उपाय नहीं है। मैं कोई विचारक नहीं हूं, और न चाहता हूं कि कोई विचारक हो। द्रष्टा चाहिये, दर्शन चाहिये, दृष्टि चाहिये। वह आंख चाहिये भीतर में, जिससे जीवन में परम सत्य का अनुभव हो जाय।●●●

पत्र–प्रेरणा

आचार्य श्री द्वारा श्री माधव, जबलपुर को लिखे गये दो पत्र–जब माधव जी ने जीवन के उद्देश्य को जानना चाहा—उस संदर्भ में)

मेरे प्रिय,

प्रेम। संसार ऐसे ही चलता रहा है—चलता रहेगा।
कल भी ऐसा ही था और कल भी ऐसा ही होगा।
लेकिन कल तुम नहीं थे और कल तुम नहीं होओगे।
इसलिये, आज ही जियो—गहराई में और समग्रता में।
और स्वयं से पलायन के लिये संसार की चिंता में न पड़ो।
स्वयं को जान सको तो काफी से ज्यादा है।

रजनीश के प्रणाम
२५–१–१९७१

मेरे प्रिय,

प्रेम। जीवन का उद्देश्य न खोजो तो अच्छा।
वह खोज **उस भांति** असम्भव है।
उसमें सीधे ही पड़ने से सिवाय भटकन के और कुछ भी हाथ नहीं लगता है।
खोजना ही है तो खोजो जीवन को ही।
क्यों नहीं—क्या को बनाओ प्रस्थान बिन्दु।
और फिर क्यों भी जान लिया जाता है।
उद्देश्य भी होता है ज्ञात लेकिन वह परोक्ष परिणाम है।

रजनीश के प्रणाम
२६–१–१९७१

वासंती वखारिया (खेडा) को लिखा गया पत्र

प्रिय वासंती,

प्रेम। प्रेम संबंध नहीं है।
वस्तुतः प्रेम का दूसरे से प्रयोजन ही नहीं है।
प्रेम है जीने का एक ढंग।
और अप्रेम भी है जीने का ही ढंग।
प्रेम है फूल की भांति जीना।
अप्रेम है कांटे की भांति जीना।
लेकिन, कांटे दूसरों को चुभते हैं—अप्रेम स्वयं की ही छाती में चुभ जाता है।
और फूल दूसरों को सुगंध देते हैं—प्रेम स्वयं को ही सुगंध से भर जाता है।

रजनीश के प्रणाम
२६–२–१९७१

आचार्य श्री का श्री सरदारीलाल, सहगल अमृतसर को लिखा गया वह पत्र जिसके आधार पर बड़े बड़े ग्रन्थ और शास्त्र लिखे जा सकते हैं।

मेरे प्रिय,

प्रेम। स्वयं को समर्पित करने के बाद न कोई कष्ट है, न कोई दुःख है।

क्योंकि, मूलतः स्वयं ही समस्त दुखों का आधार है।

और, फिर जिस क्षण से जाना जाता है कि प्रभु ही सब कुछ है उसी क्षण से शिकायत का उपाय नहीं है, वही प्रार्थना है।

और जहां शिकायत नहीं है, वहीं प्रार्थना है।

वहीं अनुग्रह का भाव है।

वहीं आस्तिकता है।

और इस आस्तिकता में ही इसका प्रसाद बरसता है।

बनो आस्तिक और जानो।

लेकिन, आस्तिक बनना सर्वाधिक कठिन है।

जीवन को उसकी समग्रता में स्वीकार करने से बड़ी और कोई तपश्चर्या नहीं है।

रजनीश के प्रणाम

१६-११-७०

(श्री आनन्द विजय, जबलपुरको लिखे गये आचार्य श्री के कुछ पत्र)

प्रिय आनंद विजय

प्रेम। प्रभु की अमृत वर्षा जब होती है तब ऐसी ही बाढ़ आती है।

उसके हृदय में कृपणता तो है ही नहीं न!

पर हम ही हैं अभागे कि कभी अपने हृदय के पात्र को उसके सामने फैलाते नहीं हैं।

अहंकार संकोच से ही सिकुड़ा रहता है।

या दंभ से दबा रहता है।

या अज्ञान में ही भटकता रहता है।

संन्यास अहंकार का त्याग है।—उसके समस्त स्थूल सूक्ष्म रूपों में।

फिर स्वभावतः ही हृदय का पात्र प्रभु के समक्ष फैल जाता है।

और अमृत बरसने लगता है।

वह तो बरस ही रहा था—लेकिन हमारा हृदय पात्र उल्टा था।

रजनीश के प्रणाम

१६-२-१९७१

प्रिय आनंद विजय,
प्रेम। लोग तो पागल समझेंगे ही।
वह उनकी सदा की परम्परा है।
पागलखाने में स्वस्थ होना जैसे खतरनाक है, वैसे ही दुखी लोगों में आनंदित होना है।
पर बांटो आनंद को—जो पागल कहें उन्हें भी आनंद दो— प्रेम दो।
वे समझेंगे—लेकिन देर से।
वह भी उनकी सनातन रीति है।
फिर उनका कोई कसूर भी तो नहीं है।—आंखें हैं बंद, इसलिए प्रकाश दिखाई नहीं पड़ता है।
और इसलिए जो कहता है, उसे दिखाई पड़ता है—वह स्वभावतः पागल है।
वह उनकी आत्म रक्षा का उपाय है।
दया के योग्य हैं वे।
उनके लिए प्रभु से प्रार्थना करो।

रजनीश के प्रणाम
१७-२-१९७१

प्रिय आनंद विजय,
प्रेम। संन्यास के लिये मन कैसे कैसे बचाव खोज रहा था?
क्योंकि, संन्यास मन की मृत्यु जो है।
पर साहस किया तुमने—उठ सके मन के ऊपर।
तो जाना वह जो कि परमानंद है।
मन है संसार।
मनातीत है सत्य।
संन्यास मन से मनातीत में यात्रा है।
अब जो पाया है, उसकी खबर औरों तक भी पहुंचाओ।
जो जाना है उसे औरों को भी जनाओ।
अब तो तुम भी उपकरण हो गये प्रभु के।
अब उसे बोलने दो—तुम उसकी वाणी बनो।
अब उसे गाने दो—तुम उसकी बांसुरी बनो।

रजनीश के प्रणाम
१८-२-७१

प्रिय आनंद विजय,
प्रेम। निकट ही है जीवन स्रोत।
उसके पूर्व ही नाद-ब्रह्म का अवतरण होता है।
नाद में डूबो और नाद से एक हो जाओ।
इस स्वर हीन संगीत में डूबे कि स्वयं को पाया।
खोया स्वयं को कि पाया।

रजनीश के प्रणाम
२५-२-१९७१

प्रिय आनंद विजय,

प्रेम। देखा न कि ध्यान से ही काम-क्रोध विलीन हो जाते हैं ?
अनुभव किया न कि ध्यान से प्रेम करुणा का जन्म हो जाता है।
काम क्रोध से मात्र लड़ते रहते—समय और शक्ति को खोना है।
और विक्षिप्तता को आमंत्रण भी।

निषेध मार्ग नहीं है।

क्योंकि, निषेध दमन है।
निषेध को—विधायक को खोजने से ही आत्म क्रांति घटित होती है।

रजनीश के प्रणाम
१८-२-१९७१

* उसने कहा—
तर्क करो ताकि—श्रद्धा को उपलब्ध हो जाओ।
और निर्विचार हो ओ—ताकि विचार का आगमन हो सके।

** उसने आगे पुकार की—
स्वयं को जानो ताकि 'जो है' वह जाना जा सके।
और जीवन की समग्रता को देखो—ताकि परमात्मा का दर्शन हो सके।

*** उसने फिर कहा—
पूजा छोड़ो—ताकि स्वयं प्रभु हो सको
और शास्त्रों को विदा कर दो—ताकि ज्ञान की वर्षा हो सके।

**** उसने गुनगुनाया—
काम को जानो—उससे भागो नहीं—ताकि राम हो सको।
और

***** उसने बार बार यही तो दुहराया
शून्य शून्य शून्य ताकि वह जो सत्ता है उतर सके वहाँ—
उस चित्त में जो सर्व भाँति खाली है, न होने से भरा है वहां—
हाँ, वहीं जो शिशु चित्त के समान सरलतम है—वहीं प्रवेश पा सके।

● और अंत में उसने कहा—वह—जो सार—सर्व भांति सत्य—
मौन के द्वार से प्रस्फुटित एक शब्द—**प्रेम**। सबके भीतर में बैठे उस प्रभु को प्रणाम।

● उसने कहा—सब तरह से असहाय हो जाओ ताकि—
प्रभु का आधार पा सको। समर्पण समर्पण समर्पण।

डूबना डूबना डूबना—।
खोना खोना खोना—।
पाना पाना पाना—।

कमलेश शर्मा, ब्राह्मणपारा, रायपुर
८. ११. ७०

मेरी संन्यास यात्रा

(पिछले अंक में आपने स्वामी आनंद विजय, जबलपुर की संन्यास यात्रा का अतः स्पर्श किया। उसी के आगे यह यात्रा क्रम प्रस्तुत है।)

इन सब घटनाओं के बाद सोमवार घर वापिस जाने का विचार था। समाचार दे दिया था कि संन्यास लेकर घर आ रहे हैं। पर जबसे भगवानदास जी को लेकर आचार्य श्री से मिलाने ले गये तब आचार्य जी बोले कि अभी दो दिन और न जायें गीता प्रवचन पूरा ही कर जायें मैंने कहा—समाचार दे दिया है जाना पड़ेगा फिर बोले नहीं जाना अभी, और मैं उनके वचनों को न टाल सका और रुक गया। उन दिनों जो घटना घटी वह अद्‌भुत थी जिसे देने के लिए आचार्य जी ने रोका था। जब संन्यास के फूल मुझमें फूलते नजर आने लगे इतना आनन्द, इतना आनन्द जिसे मैं सोच भी नहीं सकता था कि इतना आनन्द मेरे भीतर छिपा है और मुझे पता नहीं। फिर आचार्य जी के मंच पर ही बैठकर आचार्य जी का अवलोकन करता तो समझ आता कि अगर कृष्ण रहे होंगे तो ऐसे ही रहे होंगे। आचार्य श्री पूरी प्रतिभा लेकर गीता पर बोलते ऐसा लगता साक्षात् कृष्ण बोल रहे हों उस वक्त उनकी प्रतिभा देखने लायक रहती है। और इसी आनन्द में समय गुजर गया और घर आने की तैयारी हो गई, और सक्रिय ध्यान बम्बई में ही शुरू कर दिया था और उसके परिणाम मुझमें आने लगे थे। और मुझे मालुम पड़ने लगा कि गेरुआ वस्त्र का और माला में आचार्य श्री के चित्र का क्या उपयोग है। वस्त्र मुझे हमेशा ख्याल दिलाते हैं कि मैं संन्यासी के भेष में हूं कोई भी गलत काम मुझसे नहीं होता और एक अनूठा आनन्द बहता रहता है। चित्र के भी अद्‌भुत परिणाम हैं; हमेशा आचार्य जी को अपने निकट पाता हूं और जो उनके निकट होकर अनुभूति होती थी वह उनके चित्र को साथ रखने से होती है। हो सकता है यह मेरी खुद की कल्पना हो पर मुझे उनका बिछुड़ना खलता नहीं। पर पहले जब भी उनसे बिदा लेता तो मन में एक गहरा संताप होता था पर अब ऐसा नहीं है। चौबीस घन्टे उनके पास रहता हूं ऐसा अन्दर ही अन्दर महसूस होता है। फिर इस सब आनन्द को लेकर मैं घर आ गया और घर रात्रि तीन बजे आया इसीलिये कि रात्रि में एकदम इस भेष में कोई न देख पायेगा। पर ऐसी कोई बात न थी। मैं एकदम निर्भय हो गया था किसी प्रकार का मन में संकोच न था। घर पहुंच आवाज दी पत्नी ने ही दरवाजा खोले और कुछ भी न बोली और पूरे घर में खबर कर आई कि लाल रंग के कपड़े पहने हैं और गले में माला डाल ली है। पत्नी को दुख से भरी देख मैंने भी चुपचाप बिस्तर बिछाया और सो गया और नींद आ गई और पत्नी ने भी कोई चर्चा नहीं की और सो गई। फिर सुबह हुआ और सब मुहल्ला पड़ौस वालों को मालूम पड़ा सब आते और यह कहते यह क्या किया? छोटे-छोटे बच्चे हैं और तुम साधु हो गये इन्हें कौन पालेगा। सब सुनता रहता मेरी मां कहती उतार दो यह कपड़े हम इन कपड़ों में तुम्हें नहीं देख सकते हम फाड़ देंगे। पर मेरी समझ में नहीं आता यह सब क्या चाहती हैं। मैं संसार में ही रहूं प्रभु के जगत में नहीं जाऊँ जरूर इसमें इनका स्वार्थ जुड़ा है जो कि मुझे इस प्रकार देखने में दुख पाती हैं। मैंने सब कुछ कहा कि मैं घर नहीं छोड़ूंगा पर वह कहती तुम्हारा कोई भरोसा नहीं कब घर छोड़ चले जाओ और इसी सांत्वना देने को मां योग क्रांति को भी घर ले गया पर घर के लोगों का शक नहीं गया पर पत्नी फिर भी कुछ समझ गई है और वह भी संन्यास लेने को तैयार है और उन्होंने भी ध्यान करना शुरू कर दिया है इससे उनमें फर्क होने लगा है और संतोष हो गया है। फिर भी खोई-खोई सी रहती है और कहती है अब कभी घर से बाहर नहीं जाने दूंगी पर मुझे इसका कोई असर नहीं पड़ता और अपने आनंद में जीता हूं और सक्रिय ध्यान को पूरे संकल्प से करता हूं, ध्यान के परिणाम अद्‌भुत होते हैं और रोज नई-नई तरंगें प्रगट होती हैं जिसे पाकर आनन्दित हो नाचने लगता हूं और बच्चों को लेकर घर में, मुहल्ले में, बगीचे

में नाचता रहता हूं लोग देखकर कहते हैं क्या हो गया बाबाजी को जो पागलों की तरह नाचते रहते हैं। मेरी भी समझ के बाहर है कि पहले मुझे प्यास भी लगी रहे तो आपसे पानी नहीं मांग सकता था और आज है कि बगैर चेष्टा के मैं सड़कों पर नाचता रहता हूं और बच्चों को देखकर आनन्द विभोर हो उठता हूं, किसी के भी बच्चे हों। अद्भुत स्थिति मेरी हो गई है, परम आनन्द होता रहता है, जिसे कहाँ तक लिखूं समझ नहीं आता।

दुकान पर बैठता हूं, पर उसी आनन्द में डूबा रहता हूं। ग्राहक पूछते हैं : यह संन्यासी कौन हैं, कोई कह देता मालिक हैं। एक सी० आई० डी० इंस्पेक्टर ने मेरे एक परिचित से पूछा कि यह बाबाजी कौन हैं—जो बच्चों को लेकर खंजरी बजाते, गोपाल कृष्ण, राधे कृष्ण, महावीर : अंतर्यामी की आवाज लगाते फिरता है, वह कौन ? वह कोई नहीं है, पुष्प कटपीस के मालिक हैं। क्या हो गया इन्हें। संन्यासी हो गये हैं। और सभी मिलने वाले यही कहते हैं कि इतनी उम्र में संन्यास ले लिया है। तो मेरे पास अभी क्या जल्दी थी, बहुत समय था। मैं उन्हें एक ही जबाब देता कि ठीक है, आपकी बात मान लेता हूं। पर मुझे मौत का समय निश्चित कर दो, पर वह बेचारे जो मौत को भी नहीं जानते, चुप रह जाते हैं।

मेरे अनुभव से संन्यास मनुष्य के लिए अनिवार्य है और हर घर में एक संन्यासी होना बहुत जरूरी है ताकि जो फूल संन्यासी में खिलें, उसकी सुगंध उसके परिवार वाले एवं आसपास के लोग ले सकें—और पूरा वातावरण ही रसपूर्ण हो जाये। बच्चों में अच्छे संस्कार आना स्वाभाविक हो जायेगा फिर बच्चों से यह नहीं कहना पड़ेगा कि कौन सा कार्य करना है, कौन सा नहीं, ऐसा मैंने संन्यास के बाद जाना है। मेरे जीवन पर इस प्रकार का चमत्कार घटित हो गया—ऐसी कभी कोई आशा न थी। इसी आशा से भरा मेरा जीवन निरंतर आनंदित होता रहता है और मैं अपनी सुध-बुध भूल प्रेम-गंगा बहाता रहता हूं, इसी संदर्भ में कई प्रकार की चर्चा भी चलती रहती है : कोई कहता है, पागल हो गया है, कोई कहता है ढोंगी है, कोई कहता है बहुत अच्छा काम किया आपने। पर इन सब बातों के बावजूद भी मैं अपने में पूर्ण प्रविष्ठ रहता हूं, किसी से कोई शिकायत नहीं है। कई बार लोग मुझे बुलाकर ऐसे प्रसंग खड़े कर देते हैं कि साधारण स्थिति में क्रोध से भर जाता पर अब ऐसा कुछ नहीं होता और बड़ी शांति से उनके शब्दों को सुनता और जिन बातों का जबाब दे पाता, देता—बाकी चुप रहता।

इस प्रकार मेरी मनोदशा देख लोगों पर कुछ जरूर असर होता और लोगों की चर्चा का विषय बनता, पर किसी से मान-अपमान का मतलब नहीं रखता हूं।

घर के वातावरण में एकदम सुधार हो गया है। जो बच्चे दिन भर लड़ना, झगड़ना, गाली देना, अब वही बच्चे ध्यान के माध्यम से शांतप्रफुल्लित आनन्द मग्न हो नाचते खेलते और दिन भर गुनगुनाते रहते : राधेकृष्ण, गोपालकृष्ण, महावीर स्वामी अंतर्यामी की रट लगाये रहते हैं। उन्हें देख बहुत आनन्द आता। जिस रास्ते से गुजरता वही धुन, सब कहते क्या कर दिया बाबाजी, दिन भर इसी प्रकार गाते हंसते रहते हैं। सक्रिय ध्यान को निरंतर पूरे संकल्प से करने के कारण मुझमें और मेरी पत्नि में जो घटित हुआ है, वह बहुत विचित्र है। जो पत्नि पहले मुझे संन्यासी देखकर विरोध करती थी, अब वही पत्नि ध्यान के माध्यम से सैक्स मुक्त हो संन्यास लेने के लिए तैयार है। और मुझमें भी यह सैक्स की प्रवृत्ति समाप्त होती नजर आती है और संभोग से जो शक्ति क्षीण होती थी, अब वह पूरी संग्रहीत हो रही है, जिससे मुझे बहुत बड़ा आत्म बल मिलता है और संकल्प प्रगाढ़ होता जाता है।

इसी संकल्प के माध्यम से जिन लोगों के बीच नहीं जाता था अब उन्हीं लोगों के बीच नाचता, गाता आनंद बरसाता रहता हूं। जैसे अभी ग्राम: बरगी में अभी जैनियों का एक मेला भरा था। उन लोगों के बीच मुझे जाने का मौका मिला और जब मैंने वहां अपना कीर्तन शुरू किया, गोपाल कृष्ण, राधेकृष्णा, महावीर स्वामी अंतर्यामी तो कई बार लोगों ने विरोध किया, पर उन्हीं के बीच की एक खासी भीड़ मेरे साथ थी, जो मुझे इस प्रकार करने को बाध्य करती। तो मैं भी पूरा आनंदित हो सब कुछ प्रभु पर छोड़ उनका साथ देता।

●●●

'युक्रांद' के शरीर को जिनने अपना खून देकर हमारी आत्मा को गति दी है

प्रियवर,

आपके प्रेमपूर्ण आत्मीय सहयोग से पिछले दिसम्बर माह के अंक तक युक्रांद की स्थायी-निधि हेतु राशि १,०२२ रु. प्राप्त हुई थी । तबसे अब तक युक्रांद के माध्यम से पूज्य आचार्य श्री की सृजनात्मक जीवन दृष्टि को मूर्त रूप देने हेतु राशि ९४९ रु. प्राप्त हुई है, और कुल स्थायी निधि १,९७१ रु. हुई है ।

आपका भी पावन सहयोग इस दिशा में शीघ्र मिलेगा, ऐसी आकांक्षा है, ताकि स्थायी निधि १०,००० रुपये हो सके ।

जिनसे हमें इस दिशा में सहयोग मिला, उनके नाम व पते इस प्रकार हैं:—

क्रमांक	नाम एवं पता	प्राप्त राशि
१.	श्री जे. डी. लश्कारी, ३५, श्रेयस, ५ वां फ्लोर, १८०, नरीमन प्वाइन्ट, बंबई	२५०)
२.	श्रीमती शीला वर्मा, C/o श्री पी० के० वर्मा, डिप्टी डायरेक्टर आफ माइन्स सेफ्टी. डाक घर : झुमरी तलैया (बिहार)	१५)
३.	श्री एन० जी० बखारिया, एक्जीक्यूटिव इन्जीनियर, पो० आ० : केरा केम्प (गुज०)	१००)
४.	श्री चंद्र पुनमचंद शाह एवं श्री पुनमचंद सी. शाह, कलकत्ता ।	५०)
५.	श्रीमती सिन्धु देशपांडे ४३०, बुधवारपेठ, पूना–२	२१)
६.	श्री राधेश्याम बंसल, फरीदाबाद (हरयाणा)	१०)
७.	श्री केदार सिंहल, रामकृष्ण सेवा केंद्र नीमच (म० प्र०)	१०)
८.	श्री गोपाल नारायण मोहले, वाणिज्य कर अधिकारी, ब्यावर (राज०)	५०)
९.	श्री एस० पी० श्रीवास्तव, डुमरियाघाट (सारण, बिहार)	१०)
१०.	श्री जयन्त एम० ठक्कर केअर–प्रभात ट्रेडिंग कम्पनी ७८/८४, बापू खोटे स्ट्रीट, ३ रा माला, बम्बई-३	१०)
११.	मुनि श्री मानिक विजय जी द्वारा : शा रतनशी उमरसी पो० वाडा (जिला मांडवी) गुजरात	१००)
१२.	श्री हरिनारायण पारीक श्री पालुराम अग्रवाल श्री मणिकांत ठाकर जमशेदपुर	१००) १००) १००)
१३.	श्री बी. डी. नागिया C 162, स्टेशन रोड, भुसावल	१३)
१४.	डा० संगप्पा पोस्ट धनुरा (एस.) थाना (बिदार मैसूर)	१०)
	कुल प्राप्त	९४९)

पत्र प्रेरणा

(आचार्य श्री द्वारा स्वामी आनंद मूर्ति, अहमदाबाद को लिखा गया एक पत्र)

प्रिय आनंद मूर्ति,

प्रेम ।

संकल्प के मार्ग में आती बाधाओं को प्रभु-प्रसाद समझना;
क्योंकि उनके बिना संकल्प के प्रगाढ़ होने का और कोई उपाय नहीं है ।
अंततः, सब कुछ स्वयं पर ही निर्भर है ।
अमृत जहर हो सकता है; और जहर अमृत हो सकता है ।
फूल कांटों में छिपे हैं ।
कांटों को देखकर जो भाग जाता है, वह व्यर्थ ही फूलों से वंचित रह जाता है ।
हीरे खदानों में दबे हैं ।
उनकी खोज में पहले तो कंकड़-पत्थर ही हाथ आते हैं ।
लेकिन, उनसे निराश होना हीरों को सदा के लिए ही खोना है ।
एक-एक पल कीमती है ।
समय लौट कर नहीं आता है ।
और खोये अवसर खोया जीवन बन जाते हैं ।
अंधेरा जब घना हो तो जानना कि सूर्योदय निकट है ।

रजनीश के प्रणाम
१७. ११. १९७०

(भीतर के प्रथम पृष्ठ की रेखानुकृति : श्री कमलेश शर्मा, ब्राह्मणपारा, रायपुर)

मानसेवी संपादक : अरविन्द कुमार । सह-संपादक : आलोक कुमार पाण्डे । व्यवस्थापक : श्री आर. आर. मिश्रा
स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्द कुमार, ७९० राइटटाउन, जबलपुर ।
मुद्रण : श्रीपाल प्रिन्टर्स, १९१, कोतवाली वार्ड, जबलपुर से मानसेवी संपादक अरविन्द कुमार के लिये मुद्रित ।
वर्ष : २ ॥ १ एवं १६ फरवरी ७१ ॥ अंक : १५-१६ ॥ मूल्य : १.००
॥ वार्षिक मूल्य : १२.०० ॥

आचार्य श्री रजनीश जी के सान्निध्य में
सात दिवसीय ध्यान योग शिविर

●

साधना स्थल : माउन्ट आबू (राजस्थान)

साधना दिनांक—४ अप्रेल रविवार सायं से १० अप्रेल ७१ शनिवार रात्रि तक

विशेष —ध्यान योग (जेट स्पीड मेडीटेशन) एवं ईशावास्य उपनिषद् पर प्रवचन

संयोजक —जीवन जागृति केन्द्र, म्युनिसिपल स्कूल के सामने, खड़िया चार रास्ता अहमदाबाद-१, फोन : २४०८३

व्यय हेतु राशि—४०) रु० सामान्य शिविर शुल्क
तथा १०) प्रतिदिन लॉज में रहने-खाने का प्रति व्यक्ति अतिरिक्त शुल्क।

(शीघ्र स्थान सुरक्षित करायें ताकि उचित हॉटल रिजर्वेशन हो सके।)

नई ज्योतियां ! दिव्य वाणी ! जीवन संगीत से आलोकित !

नई साज सज्जा में

आचार्य श्री रजनीश के विचारों की आध्यात्मिक त्रैमासिक संकलन पत्रिका

●

ज्योति शिखा

संपादक—श्री महीपाल मूल्य ५) वार्षिक

●

[आप भी अपना वार्षिक शुल्क भेजकर इन कृतियों को प्राप्त कीजिये या आप चाहें तो उपहार में भेंट करें]

संपर्क : जीवन जागृति केन्द्र, रूम नं० ५३, एम्पायर बिल्डिंग,
डा० डी० एन० रोड, बम्बई-१
Phone : 264530